॥ श्रीहरिः ॥

111

श्रीगोस्वामी तुलसीदासजीरचित

जानकी मंगल

(सरल भावार्थसहित)

गीताप्रेस, गोरखपुर

॥ श्रीहरिः ॥

श्रीगोस्वामी तुलसीदासजीरचित

जानकी मंगल

(सरल भावार्थसहित)

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

गीताप्रेस, गोरखपुर

॥ श्रीहरिः ॥

प्रथम संस्करणका निवेदन

जानकी-मङ्गलमें (जैसा कि इसके नामसे ही स्पष्ट है) प्रातःस्मरणीय गोस्वामीजीने जगज्जननी आद्याशक्ति भगवती श्रीजानकीजी तथा परात्पर पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामके परम मङ्गलमय विवाहोत्सवका बड़े ही मधुर शब्दोंमें वर्णन किया है। जनकपुरमें स्वयंवरकी तैयारीसे आरम्भ करके विश्वामित्रके अयोध्या जाकर श्रीराम-लक्ष्मणको यज्ञ-रक्षाके व्याजसे अपने साथ ले आने, यज्ञ-रक्षाके अनन्तर धनुष-यज्ञ दिखानेके बहाने उन्हें जनकपुर ले जाने, रंग-भूमिमें पधारकर श्रीरामके धनुष तोड़ने तथा श्रीजनकराजतनयाके उन्हें वरमाला पहनाने, लग्न-पत्रिका तथा तिलककी सामग्री लेकर जनकपुरोधा महर्षि शतानन्दजीके अयोध्या जाने, महाराज दशरथके बरात लेकर जनकपुर जाने, विवाह-संस्कारसम्पन्न होनेके अनन्तर बरातके बिदा होने, मार्गमें भृगुनन्दन परशुरामजीसे भेंट होने तथा अन्तमें अयोध्या पहुँचनेपर वहाँ आनन्द मनाये जाने आदि प्रसङ्गोंका संक्षेपमें बड़ा ही सरस एवं सजीव वर्णन किया गया है; जो प्रायः रामचरितमानससे मिलता-जुलता ही है। कहीं-कहीं तो रामचरितमानसके शब्द ही ज्यों-के-त्यों दुहराये गये हैं।

इस छोटे-से ग्रन्थका सरल भावानुवाद कई वर्ष पूर्व कवितावलीके टीकाकार हमारे पूर्वपरिचित स्वर्गीय श्रीइन्द्रदेवनारायणसिंहजीने किया था, जिसका हमारे अपने श्रीमुनिलालजी (वर्तमान स्वामी श्रीसनातनदेव-जी) ने बड़े परिश्रम एवं प्रेमसे संशोधन भी कर दिया था। परंतु इच्छा रहते भी इतने लम्बे कालतक उसे छापनेका सुयोग नहीं उपस्थित हुआ। श्रीसीतारामजीकी कृपासे वह स्वर्ण-अवसर अब प्राप्त हुआ है और पूज्य गोस्वामीजीकी यह मङ्गलमयी कृति सरल अनुवादसहित श्रीरामभक्तोंकी सेवामें सादर प्रस्तुत की जा रही है। अनुवाद कैसा हुआ है, इसकी परख तो विज्ञ पाठक ही कर सकेंगे। पाठ अथवा अर्थमें जहाँ कहीं भ्रमवश तथा दृष्टिदोषसे भूलें रह गयी हों, उनकी ओर यदि कोई महानुभाव हमारा ध्यान आकृष्ट करनेकी कृपा करेंगे तो हम उनके कृतज्ञ होंगे तथा अगले संस्करणमें उन भूलोंको सुधारनेकी चेष्टा करेंगे। श्रीसीतारामजीके इस परम पावन चरित्रके अनुशीलनसे जनताका अशेष मङ्गल होगा—इसी आशासे उनकी यह वस्तु उन्हींके पाद-पद्मोंमें निवेदित है।

विनीत

हनुमानप्रसाद पोद्दार
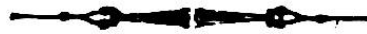
॥ श्रीहरिः ॥

श्रीजानकी-मङ्गल

मङ्गलाचरण

गुरु गनपति गिरिजापति गौरि गिरापति।
सारद सेष सुकबि श्रुति संत सरल मति॥ १ ॥
हाथ जोरि करि बिनय सबहि सिर नावौं।
सिय रघुबीर बिबाहु जथामति गावौं॥ २ ॥

गुरु, गणपति (गणेशजी), शिवजी, पार्वतीजी, वाणीके स्वामी बृहस्पति अथवा विष्णुभगवान्, शारदा, शेष, सुकवि, वेद और सरलमति संत—सबको हाथ जोड़कर विनयपूर्वक सिर नवाता हूँ और अपनी बुद्धिके अनुसार श्रीरामचन्द्रजी और जानकीजीके विवाहोत्सवका गान करता हूँ॥ १-२ ॥

स्वयंवरकी तैयारी

सुभ दिन रच्यौ स्वयंबर मंगलदायक।
सुनत श्रवन हिय बसहिं सीय रघुनायक॥ ३ ॥
देस सुहावन पावन बेद बखानिय।
भूमि तिलक सम तिरहुति त्रिभुवन जानिय॥ ४ ॥

पृथ्वीका तिलकस्वरूप और तीनों लोकोंमें विख्यात जो परम पवित्र शोभाशाली और वेदविदित तिरहुत देश है, वहाँ एक अच्छे दिन श्रीजानकीका मङ्गलप्रद स्वयंवर रचा गया, जिसका श्रवण करनेसे श्रीराम और सीताजी हृदयमें बसते हैं॥ ३-४ ॥

तहँ बस नगर जनकपुर परम उजागर।
सीय लच्छि जहँ प्रगटी सब सुख सागर॥ ५ ॥
जनक नाम तेहिं नगर बसै नरनायक।
सब गुन अवधि न दूसर पटतर लायक॥ ६ ॥

वहाँ (तिरहुत देशमें) जनकपुर नामक एक प्रसिद्ध नगर बसा हुआ था, जिसमें सुखोंकी समुद्र लक्ष्मीस्वरूपा श्रीजानकीजी प्रकट हुई थीं॥ ५ ॥ उस नगरमें जनक नामके एक राजा निवास करते थे, जो सारे गुणोंकी सीमा थे और जिनके समान कोई दूसरा नहीं था॥ ६ ॥

भयउ न होइहि है न जनक सम नरवइ।
सीय सुता भइ जासु सकल मंगलमइ॥ ७ ॥
नृप लखि कुँअरि सयानि बोलि गुर परिजन।
करि मत रच्यौ स्वयंबर सिव धनु धरि पन॥ ८ ॥

जनकके समान नरपति न हुआ, न होगा, न है; जिनकी पुत्री सर्वमङ्गलमयी जानकीजी हुईं॥ ७ ॥ राजाने राजकुमारीको वयस्क होते देख अपने गुरु और परिवारके लोगोंको बुलाकर सलाह की और शिव-धनुषको शर्तके रूपमें रखकर स्वयंवर रचा। [अर्थात् यह शर्त रखकर स्वयंवर रचा कि जो शिवजीका धनुष चढ़ा देगा, वही कन्यासे विवाह करेगा] ॥ ८ ॥

पनु धरेउ सिव धनु रचि स्वयंबर अति रुचिर रचना बनी।
जनु प्रगटि चतुरानन देखाई चतुरता सब आपनी॥
पुनि देस देस सँदेस पठयउ भूप सुनि सुख पावहीं।
सब साजि साजि समाज राजा जनक नगरहिं आवहीं॥ १ ॥

राजाने शिव-धनुष चढ़ानेकी शर्त रखकर स्वयंवर रचा, जिसकी सजावट अत्यन्त सुन्दर थी, मानो ब्रह्माने अपना सम्पूर्ण कौशल प्रत्यक्ष करके दिखा दिया। फिर देश-देशमें समाचार भेजा गया, जिसे सुनकर राजालोग प्रसन्न हुए और वे सब-के-सब अपना साज सजा-सजाकर जनकपुरमें आये॥ १ ॥

रूप सील बय बंस बिरुद बल दल भले।
मनहुँ पुरंदर निकर उतरि अवनिहिं चले॥ ९ ॥

दानव देव निसाचर किंनर अहिगन।
सुनि धरि-धरि नृप बेष चले प्रमुदित मन॥ १० ॥

वे सुन्दरता, शील, आयु, कुलकी बड़ाई, बल और सेनासे सुसज्जित होकर चले, मानो इन्द्रोंका यूथ ही पृथ्वीपर उतरकर जा रहा हो॥ ९ ॥ दैत्य, देवता, राक्षस, किन्नर और नागगण भी स्वयंवरका समाचार सुन, राजवेष धारण कर-करके प्रसन्नचित्तसे चले॥ १० ॥

एक चलहिं एक बीच एक पुर पैठहिं।
एक धरहिं धनु धाय नाइ सिरु बैठहिं॥ ११ ॥
रंग भूमि पुर कौतुक एक निहारहिं।
ललकि सुभाहिं नयन मन फेरि न पावहिं॥ १२ ॥

कोई चल रहे हैं, कोई मार्गके बीचमें हैं, कोई नगरमें घुस रहे हैं और कोई दौड़कर धनुषको पकड़ते हैं और फिर सिर नीचा करके—लज्जित हो बैठ जाते हैं (क्योंकि उनसे धनुष टस-से-मस नहीं होता)॥ ११ ॥ कोई रङ्गभूमि और नगरकी सजावट बड़े चावसे देखते हैं और बड़े भले जान पड़ते हैं, वे अपने मन और नयनोंको वहाँसे फेर नहीं पाते॥ १२ ॥

जनकहि एक सिहाहिं देखि सनमानत।
बाहर भीतर भीर न बनै बखानत॥ १३ ॥
गान निसान कोलाहल कौतुक जहँ तहँ।
सीय-बिबाह उछाह जाइ कहि का पहँ॥ १४ ॥

कोई राजा जनकको अतिथियोंका सम्मान करते देखकर उनसे ईर्ष्या करते हैं। इस समय बाहर-भीतर सर्वत्र इतनी भीड़ हो रही है कि उसका वर्णन करते नहीं बनता॥ १३ ॥ जहाँ-तहाँ गान और नगारोंका कोलाहल एवं चहल-पहल हो रही है। भला जानकीजीके विवाहका आनन्द किससे कहा जा सकता है॥ १४ ॥

विश्वामित्रजीकी राम-भिक्षा

गाधि सुवन तेहि अवसर अवध सिधायउ।
नृपति कीन्ह सनमान भवन लै आयउ॥ १५ ॥

पूजि पहुनई कीन्ह पाइ प्रिय पाहुन।
कहेउ भूप मोहि सरिस सुकृत किए काहु न॥ १६ ॥

उसी समय विश्वामित्रजी अयोध्यापुरी गये। महाराजने उनका बड़ा आदर किया और उन्हें घर ले आये॥ १५ ॥ अपने प्रिय पाहुनेको पाकर राजा दशरथने उनकी पूजा करके खूब पहुनाई की और कहा कि 'हमारे समान किसीने पुण्य नहीं किया' (जिसके प्रभावसे हमें आपका दर्शन हुआ)॥ १६ ॥

काहूँ न कीन्हेउ सुकृत सुनि मुनि मुदित नृपहि बखानहीं।
महिपाल मुनि को मिलन सुख महिपाल मुनि मन जानहीं॥
अनुराग भाग सोहाग सील सरूप बहु भूषन भरीं।
हिय हरषि सुतन्ह समेत रानीं आइ रिषि पायन्ह परीं॥ २ ॥

महाराजने कहा कि 'हमारे समान किसीने पुण्य नहीं किया।' यह बात सुनकर मुनिने प्रसन्न हो महाराजकी बड़ाई की। उस समय महाराज और मुनिके मिलन-सुखको महाराज और मुनिका मन ही जानता था। प्रेम, भाग्य, सौभाग्य, शील, सुन्दरता और बहुत-से आभूषणोंसे भरी हुई रानियाँ हृदयसे आनन्दित हो अपने पुत्रोंसहित ऋषिके पैरोंपर पड़ीं॥ २ ॥

कौसिक दीन्हि असीस सकल प्रमुदित भईं।
सींचीं मनहुँ सुधा रस कलप लता नईं॥ १७ ॥
रामहि भाइन्ह सहित जबहिं मुनि जोहेउ।
नैन नीर तन पुलक रूप मन मोहेउ॥ १८ ॥

विश्वामित्रजीने उन्हें आशीर्वाद दिया। इससे वे सब अत्यन्त प्रसन्न हुईं, मानो उन्होंने नवीन कल्पलताओंको अमृतरससे सींच दिया हो॥ १७ ॥ जिस समय मुनिने भाइयोंके सहित श्रीरामचन्द्रजीको देखा, तब उनके नेत्रोंमें जल भर आया, शरीर पुलकित हो गया और मन मोहित हो गया॥ १८ ॥

परसि कमल कर सीस हरषि हियँ लावहिं।
प्रेम पयोधि मगन मुनि पार न पावहिं॥ १९ ॥

मधुर मनोहर मूरति सादर चाहहिं।
बार बार दसरथके सुकृत सराहहिं॥ २० ॥

वे अपने करकमलसे श्रीरामचन्द्रजीके मस्तकका स्पर्श करते हैं और हर्षित होकर उन्हें हृदयसे लगाते हैं। इस समय मुनिवर प्रेम-सागरमें डूब जाते हैं। उसकी थाह नहीं पाते॥ १९ ॥ वे आदरपूर्वक उनकी मधुर-मनोहर मूर्तिको देख रहे हैं और बार-बार महाराज दशरथके पुण्यकी सराहना करते हैं॥ २० ॥

राउ कहेउ कर जोर सुबचन सुहावन।
भयउ कृतारथ आजु देखि पद पावन॥ २१ ॥
तुम्ह प्रभु पूरन काम चारि फलदायक।
तेहिं तें बूझत काजु डरौं मुनिनायक॥ २२ ॥

तब महाराजने हाथ जोड़कर सुन्दर सुहावने शब्दोंमें कहा—'आज आपके पवित्र चरणोंको देखकर मैं कृतार्थ हो गया'॥ २१ ॥ हे प्रभु! आप पूर्णकाम हैं और चारों फल (अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष) के देनेवाले हैं, इसीसे हे मुनिनायक! मैं आपसे कोई सेवा पूछते हुए डरता हूँ॥ २२ ॥

कौसिक सुनि नृप बचन सराहेउ राजहि।
धर्म कथा कहि कहेउ गयउ जेहि काजहि॥ २३ ॥
जबहिं मुनीस महीसहि काजु सुनायउ।
भयउ सनेह सत्य बस उतरु न आयउ॥ २४ ॥

कौशिक मुनिने राजाका वचन सुन उनकी प्रशंसा की और धर्मकथा कहकर जिस कामके लिये गये थे, वह कहा॥ २३ ॥ जब मुनीश्वरने महाराजको अपना कार्य सुनाया, तब महाराज स्नेह और सत्यके बन्धनसे जडीभूत हो गये, उनसे कुछ भी उत्तर देते न बना॥ २४ ॥

आयउ न उतरु बसिष्ठ लखि बहु भाँति नृप समझायऊ।
कहि गाधिसुत तप तेज कछु रघुपति प्रभाउ जनायऊ॥
धीरज धरेउ सुर बचन सुनि कर जोरि कह कोसल धनी।
करुना निधान सुजान प्रभु सो उचित नहिं बिनती घनी॥ ३ ॥

महाराजसे उत्तर देते नहीं बनता—यह देखकर वसिष्ठजीने अनेक

प्रकारसे राजाको समझाया। उन्होंने इधर तो विश्वामित्रजीके तप और तेजका वर्णन किया और उधर कुछ श्रीरामचन्द्रजीका प्रभाव समझाया। गुरुजीके वचन सुनकर महाराजने धैर्य धारण किया और फिर कोसलेश्वर महाराज दशरथने हाथ जोड़कर कहा—'प्रभो! आप दयासागर और सारी परिस्थितिसे अभिज्ञ हैं; अतः आपके सामने बहुत विनय करना उचित नहीं है ॥ ३ ॥

नाथ मोहि बालकन्ह सहित पुर परिजन।
राखनिहार तुम्हार अनुग्रह घर बन॥ २५ ॥
दीन बचन बहु भाँति भूप मुनि सन कहे।
सौंपि राम अरु लखन पाय पंकज गहे॥ २६ ॥

'हे नाथ! घर और वनमें नगर और नगरवासियोंके सहित मेरी और इन बालकोंकी रक्षा करनेवाली तो आपकी कृपा ही है' ॥ २५ ॥ इस प्रकार महाराजने मुनिसे अनेक प्रकारके दीन वचन कहे और श्रीरामचन्द्र एवं लक्ष्मणजीको उन्हें सौंपकर उनके चरण-कमल पकड़ लिये॥ २६ ॥

पाइ मातु पितु आयसु गुरु पायन्ह परे।
कटि निषंग पट पीत करनि सर धनु धरे॥ २७ ॥
पुरबासी नृप रानिन्ह संग दिये मन।
बेगि फिरेउ करि काजु कुसल रघुनंदन॥ २८ ॥

माता-पिताकी आज्ञा पाकर श्रीराम और लक्ष्मणजी कमरमें तरकस और पीताम्बर तथा हाथोंमें धनुष और बाण लिये गुरुके चरणोंपर गिरे॥ २७ ॥ पुरवासी, राजा और रानियोंने अपने मनको श्रीरामचन्द्रजीके साथ कर दिया और कहने लगे—'हे रघुनन्दन! मुनिवरका कार्य करके कुशलपूर्वक शीघ्र ही लौट आना' ॥ २८ ॥

ईस मनाइ असीसहिं जय जसु पावहु।
न्हात खसै जनि बार गहरु जनि लावहु॥ २९ ॥
चलत सकल पुर लोग बियोग बिकल भए।
सानुज भरत सप्रेम राम पायन्ह नए॥ ३० ॥

वे सब शिवजीको मनाकर राम-लक्ष्मणको आशीर्वाद देते हैं कि

'तुम विजय और यश प्राप्त करो, नहानेमें भी तुम्हारा केश न गिरे (अर्थात् तुम्हें किसी भी अवस्थामें किसी प्रकारका कष्ट न हो) और देखो, आनेमें देरी न करना'॥ २९ ॥ उनके चलते समय सकल पुरवासी वियोगसे विह्वल हो गये और छोटे भाई शत्रुघ्नके सहित भरतजीने श्रीरामचन्द्रके चरणोंमें प्रणाम किया॥ ३० ॥

होहिं सगुन सुभ मंगल जनु कहि दीन्हेउ।
राम लखन मुनि साथ गवन तब कीन्हेउ॥ ३१ ॥
स्यामल गौर किसोर मनोहरता निधि।
सुषमा सकल सकेलि मनहुँ बिरचे बिधि॥ ३२ ॥

तरह-तरहके शुभ शकुन होने लगे, मानो उन्होंने भावी मङ्गलकी सूचना दे दी। तब श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मणजीने विश्वामित्र मुनिके साथ प्रस्थान किया॥ ३१ ॥ वे क्रमशः श्याम और गौर तथा किशोर अवस्थावाले हैं और दोनों ही मानो मनोहरताके भंडार हैं। ऐसा जान पड़ता है, मानो ब्रह्माजीने सारी शोभाको बटोरकर ही इन्हें रचा है॥ ३२ ॥

बिरचे बिरंचि बनाइ बाँची रुचिरता रंचौ नहीं।
दस चारि भुवन निहारि देखि बिचारि नहिं उपमा कहीं॥
रिषि संग सोहत जात मग छबि बसत सो तुलसी हिएँ।
कियो गवन जनु दिननाथ उत्तर संग मधु माधव लिएँ॥ ४ ॥

ब्रह्माजीने इन्हें ऐसा सँवारकर रचा है कि मानो इन्हें छोड़कर अब थोड़ी-सी भी सुन्दरता शेष नहीं रही। चौदहों भुवनमें बहुत विचारपूर्वक देखा, परंतु कहीं भी इनकी उपमा नहीं है। वे ऋषिके साथ मार्गपर चलते हुए अत्यन्त शोभायमान हो रहे हैं, उनकी वह छबि तुलसीदासके हृदयमें बस गयी है। वे ऐसे जान पड़ते हैं मानो मधु (चैत्र) और माधव (वैशाख) के साथ सूर्यदेव उत्तर दिशाको जा रहे हैं॥ ४ ॥

गिर तरु बेलि सरित सर बिपुल बिलोकहिं।
धावहिं बाल सुभाय बिहग मृग रोकहिं॥ ३३ ॥
सकुचहिं मुनिहि सभीत बहुरि फिरि आवहिं।
तोरि फूल फल किसलय माल बनावहिं॥ ३४ ॥

मार्गमें अनेकों पर्वत, वृक्ष, लता, नदी और तालाब देखते हैं। बालक-स्वभावसे दौड़ते हैं तथा पक्षी और मृगोंको रोकते हैं ॥ ३३ ॥ और फिर मुनिसे डरकर संकुचित हो लौट जाते हैं तथा फल-फूल और नये पत्तोंको तोड़कर माला बनाते हैं ॥ ३४ ॥

देखि बिनोद प्रमोद प्रेम कौसिक उर।
करत जाहिं घन छाँह सुमन बरषहिं सुर ॥ ३५ ॥
बधी ताड़का राम जानि सब लायक।
बिद्या मंत्र रहस्य दिए मुनिनायक ॥ ३६ ॥

श्रीरामचन्द्रजीके आमोद-प्रमोदको देखकर कौशिक मुनिके हृदयमें प्रेम उमड़ आता है। मार्गमें मेघ छाँह किये जाते हैं और देवतालोग फूल बरसाते जाते हैं ॥ ३५ ॥ (इसी समय) श्रीरामचन्द्रजीने ताड़काका वध किया। तब मुनिराजने उन्हें सब प्रकार योग्य जानकर मन्त्र और रहस्यसहित शस्त्र-विद्या दी ॥ ३६ ॥

मन लोगन्हके करत सुफल मन लोचन।
गए कौसिक आश्रमहिं बिप्र भय मोचन ॥ ३७ ॥
मारि निसाचर निकर जग्य करवायउ।
अभय किए मुनिबृंद जगत जसु गायउ ॥ ३८ ॥

इस प्रकार विप्र-भय-मोचन श्रीरामचन्द्रजी मार्गके लोगोंके मन और नेत्रोंको सफल करते कौशिक मुनिके आश्रममें गये ॥ ३७ ॥ वहाँ राक्षसोंके समूहका नाश करके विश्वामित्रजीका यज्ञ पूर्ण करवाया और मुनि-समूहको निर्भय किया। भगवान्‌के इस सुयशको सारे संसारने गाया ॥ ३८ ॥

विश्वामित्रजीका स्वयंवरके लिये प्रस्थान

बिप्र साधु सुर काजु महामुनि मन धरि।
रामहि चले लिवाइ धनुष मख मिसु करि ॥ ३९ ॥
गौतम नारि उधारि पठै पति धामहि।
जनक नगर लै गयउ महामुनि रामहि ॥ ४० ॥

फिर ब्राह्मण, साधुओं और देवताओंका कार्य मनमें रख महामुनि विश्वामित्रजी धनुषयज्ञके बहाने श्रीरामचन्द्रजीको लेकर चले ॥ ३९ ॥

[मार्गमें श्रीरामचन्द्रजीके चरण-स्पर्शसे] गौतमकी पत्नी अहल्याका उद्धार करा उसे पतिलोकको भेज दिया और [तत्पश्चात्] वे महामुनि श्रीरामचन्द्रजीको जनकपुर ले गये॥ ४० ॥

लै गयउ रामहि गाधि सुवन बिलोकि पुर हरषे हिएँ।
सुनि राउ आगे लेन आयउ सचिव गुर भूसुर लिएँ॥
नृप गहे पाय असीस पाई मान आदर अति किएँ।
अवलोकि रामहि अनुभवत मनु ब्रह्मसुख सौगुन किएँ॥ ५ ॥

गाधिसुत श्रीविश्वामित्रजी रामचन्द्रजीको लेकर गये। वे (जनक) पुरको देखकर हृदयमें अत्यन्त प्रसन्न हुए। विश्वामित्रजीका आगमन सुन महाराज जनक मन्त्री, गुरु और ब्राह्मणोंको लेकर आगे लेने आये। महाराजने मुनिवरके चरण पकड़े और उनसे आशीर्वाद पाया, फिर उनका अत्यन्त आदर-सत्कार किया। श्रीरामचन्द्रजीको देखकर तो वे अपने मनमें मानो सौगुना ब्रह्मसुख अनुभव कर रहे थे॥ ५ ॥

देखि मनोहर मूरति मन अनुरागेउ।
बँधेउ सनेह बिदेह बिराग बिरागेउ॥ ४१ ॥
प्रमुदित हृदयँ सराहत भल भवसागर।
जहँ उपजहिं अस मानिक बिधि बड़ नागर॥ ४२ ॥

उस मनोहर मूर्तिको देखकर महाराज जनकके मनमें प्रेम उत्पन्न हो गया। वे प्रेममें बँध गये और उनका सारा वैराग्य विरक्त हो गया (अर्थात् जाता रहा)॥ ४१ ॥ वे सानन्द हृदयसे सराहना करने लगे कि 'यह भवसागर बड़ा अच्छा है, जिसमें ऐसे उत्तम माणिक्य पैदा होते हैं। वास्तवमें ब्रह्मा बड़ा ही चतुर हैं'॥ ४२ ॥

पुन्य पयोधि मातु पितु ए सिसु सुरतरु।
रूप सुधा सुख देत नयन अमरनि बरु॥ ४३ ॥
केहि सुकृती के कुँअर कहिय मुनिनायक।
गौर स्याम छबि धाम धरें धनु सायक॥ ४४ ॥

इनके माता-पिता पुण्यके समुद्र हैं, जिनके नेत्ररूप देवताओंको ये बालकरूप कल्पवृक्ष अपने सौन्दर्य-सुधाका सुख प्रदान करते हैं॥ ४३ ॥

हे मुनिनायक ! कहिये, ये धनुर्बाणधारी गौर-श्याम शोभामय बालक किस पुण्यात्माके पुत्र हैं ? ॥ ४४ ॥

बिषय बिमुख मन मोर सेइ परमारथ।
इन्हहिं देखि भयो मगन जानि बड़ स्वारथ॥ ४५ ॥
कहेउ सप्रेम पुलकि मुनि सुनि महिपालक।
ए परमारथ रूप ब्रह्ममय बालक॥ ४६ ॥

[निरन्तर] परमार्थ-चिन्तन करनेसे मेरा मन विषयोंसे विमुख हो गया है, किंतु इन्हें देखकर वह अपना बड़ा भारी स्वार्थ जान आनन्दमें मग्न हो गया है, ॥ ४५ ॥ तब मुनीश्वरने पुलकित होकर प्रेमपूर्वक कहा—'हे पृथ्वीपते ! ये बालक ब्रह्ममय, अतएव परमार्थस्वरूप ही हैं ॥ ४६ ॥

पूषन बंस बिभूषन दसरथ नंदन।
नाम राम अरु लखन सुरारि निकंदन॥ ४७ ॥
रूप सील बय बंस राम परिपूरन।
समुझि कठिन पन आपन लाग बिसूरन॥ ४८ ॥

'ये सूर्यकुलके भूषण [महाराज] दशरथके पुत्र हैं, इनका नाम राम और लक्ष्मण है और ये दैत्योंका नाश करनेवाले हैं ॥ ४७ ॥ श्रीरामचन्द्रजी सुन्दरता, शील, आयु और वंशमें परिपूर्ण हैं (अर्थात् इन दृष्टियोंसे इनमें कोई कमी नहीं है)' किंतु अपनी कठिन शर्त जानकर राजा जनक सोचमें पड़ गये ॥ ४८ ॥

लागे बिसूरन समुझि पन मन बहुरि धीरज आनि कै।
लै चले देखावन रंगभूमि अनेक बिधि सनमानि कै॥
कौसिक सराही रुचिर रचना जनक सुनि हरषित भए।
तब राम लखन समेत मुनि कहँ सुभग सिंहासन दए॥ ६ ॥

अपनी शर्तका विचार करके महाराज जनक सोचमें पड़ गये। फिर मनमें धैर्य धारणकर वे अनेक प्रकारसे सम्मान करके उन्हें रङ्गभूमि दिखलानेको ले चले। विश्वामित्रने उसकी सुन्दर रचनाकी बड़ाई की, उसे सुनकर राजा जनक बड़े प्रसन्न हुए। तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मणजीके सहित उन्होंने मुनिवरको सुन्दर सिंहासन दिये ॥ ६ ॥

रङ्गभूमिमें राम

राजत राज समाज जुगल रघुकुल मनि।
मनहुँ सरद बिधु उभय नखत धरनी धनि॥ ४९ ॥
काकपच्छ सिर सुभग सरोरुह लोचन।
गौर स्याम सत कोटि काम मद मोचन॥ ५० ॥

उस राजाओंकी सभामें वे दोनों रघुकुलमणि इस प्रकार सुशोभित हो रहे हैं, मानो शरत्-कालके दो चन्द्रमा नक्षत्ररूपी राजाओंके मध्य शोभायमान हों॥ ४९ ॥ उनके मस्तकपर सुन्दर काकपक्ष (जुल्फें) हैं और नेत्र कमलके समान हैं तथा उनकी श्याम-गौर मूर्ति सैकड़ों, करोड़ों कामदेवोंके मदका नाश करनेवाली है॥ ५० ॥

तिलकु ललित सर भ्रुकुटी काम कमानै।
श्रवन बिभूषन रुचिर देखि मन मानै॥ ५१ ॥
नासा चिबुक कपोल अधर रद सुंदर।
बदन सरद बिधु निंदक सहज मनोहर॥ ५२ ॥

उनकी भ्रुकुटिरूप कामदेवकी कमानपर सुन्दर तिलक बाणके समान सुशोभित है। उनके सुन्दर कर्णभूषण देखकर मन प्रसन्न हो जाता है॥ ५१ ॥ उनकी नाक, ठोड़ी, कपोल, होठ और दाँत सुन्दर हैं तथा शरत्-कालके चन्द्रमाकी निन्दा करनेवाला उनका मुख स्वभावसे ही मनको हरनेवाला है॥ ५२ ॥

उर बिसाल बृष कंध सुभग भुज अतिबल।
पीत बसन उपबीत कंठ मुकुता फल॥ ५३ ॥
कटि निषंग कर कमलन्हि धरें धनु-सायक।
सकल अंग मन मोहन जोहन लायक॥ ५४ ॥

उनका वक्षःस्थल विशाल है, कंधे वृषभके टिलेके समान सुन्दर हैं और भुजाएँ अति बलवान् हैं। वे पीताम्बर और जनेऊ धारण किये हुए हैं तथा उनके गलेमें मोतियोंका हार सुशोभित है॥ ५३ ॥ वे कमरमें तरकस और करकमलोंमें धनुष-बाण धारण किये हैं। इस प्रकार उनके सभी अङ्ग मनको मोहनेवाले और दर्शनीय हैं॥ ५४ ॥

राम-लखन-छबि देखि मगन भए पुरजन।
उर अनंद जल लोचन प्रेम पुलक तन॥ ५५ ॥
नारि परस्पर कहहिं देखि दोउ भाइन्ह।
लहेउ जनम फल आजु जनमि जग आइन्ह॥ ५६ ॥

श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मणजीकी शोभाको देख पुरजन आनन्दित हो गये। उनके हृदयमें आनन्द, नेत्रोंमें जल और शरीरमें प्रेमजनित रोमाञ्च हो आया॥ ५५ ॥ दोनों भाइयोंको देखकर स्त्रियाँ आपसमें कहती हैं कि 'हम जो जगत्‌में जन्म लेकर आयी थीं सो आज हमें जन्मका फल प्राप्त हुआ'॥ ५६ ॥

जग जनमि लोयन लाहु पाए सकल सिवहि मनावहीं।
बरु मिलौ सीतहि साँवरो हम हरषि मंगल गावहीं॥
एक कहहिं कुँवरु किसोर कुलिस कठोर सिव धनु है महा।
किमि लेहिं बाल मराल मंदर नृपहि अस काहुँ न कहा॥ ७ ॥

'हमने जगत्‌में जन्म लेकर नेत्रोंका लाभ पाया।' यों कहकर सब शिवजीसे मनाती हैं कि सीताको साँवला वर मिले और हमलोग हर्षित होकर मङ्गल गावें। कोई कहती हैं कि 'कुँअर बालक हैं और शिवजीका धनुष वज्रके समान अत्यन्त कठोर है। राजासे यह बात किसीने नहीं कही कि हंसके बच्चे पर्वत किस प्रकार उठायेंगे'॥ ७ ॥

भे निरास सब भूप बिलोकत रामहि।
पन परिहरि सिय देब जनक बरु स्यामहि॥ ५७ ॥
कहहिं एक भलि बात ब्याहु भल होइहि।
बर दुलहिनि लगि जनक अपनपन खोइहि॥ ५८ ॥

श्रीरामचन्द्रजीको देखकर सब राजा निराश हो गये कि अब तो राजा जनक शर्त त्यागकर जानकीको साँवले वरके साथ ही ब्याह देंगे॥ ५७ ॥ कोई कहते हैं—'अच्छी बात है, विवाह अच्छा होगा, यदि वर और दुलहिनके लिये जनक अपनी शर्त छोड़ देंगे'॥ ५८ ॥

सुचि सुजान नृप कहहिं हमहि अस सूझई।
तेज प्रताप रूप जहँ तहँ बल बूझई॥ ५९ ॥

चितइ न सकहु राम तन गाल बजावहु।
बिधि बस बलउ लजान सुमति न लजावहु॥ ६० ॥

शुद्ध हृदयके ज्ञानवान् राजालोग कहने लगे—हमको तो ऐसा जान पड़ता है कि जहाँ तेज, प्रताप और सुन्दरता होती है, वहीं बल भी जान पड़ता है॥ ५९ ॥ देखो, तुम श्रीरामचन्द्रजीकी ओर आँख उठाकर देख भी नहीं सकते, बेमतलब गाल बजाते हो। प्रारब्धवश तुमलोगोंका बल तो लजा ही गया, अब व्यर्थ अपनी सुबुद्धिको मत लजाओ॥ ६० ॥

अवसि राम के उठत सरासन टूटिहि।
गवनहिं राजसमाज नाक अस फूटिहि॥ ६१ ॥
कस न पिअहु भरि लोचन रूप सुधा रसु।
करहु कृतारथ जन्म होहु कत नर पसु॥ ६२ ॥

श्रीरामचन्द्रजीके उठते ही धनुष अवश्य टूट जायगा और नाक फूटनेपर जैसे समाजसे उठ जाना पड़ता है, वैसे ही सारे राजसमाजको चला जाना पड़ेगा॥ ६१ ॥ 'तुमलोग श्रीरामचन्द्रजीके अमृतमय रूपरसको नेत्र भरकर क्यों नहीं पीते ? अपने जन्मको कृतार्थ कर लो। नर-पशु क्यों बनते हो ?'॥ ६२ ॥

दुहु दिसि राजकुमार बिराजत मुनिबर।
नील पीत पाथोज बीच जनु दिनकर॥ ६३ ॥
काकपच्छ रिषि परसत पानि सरोजनि।
लाल कमल जनु लालत बाल मनोजनि॥ ६४ ॥

मुनिवर विश्वामित्रके दोनों ओर दोनों राजकुमार वैसे ही सुशोभित हो रहे हैं जैसे नीले और पीले कमलके बीचमें सूर्य हों॥ ६३ ॥ मुनिवर अपने करकमलोंसे उनकी अलकोंका स्पर्श करते हैं, जिससे ऐसा जान पड़ता है, मानो अरुण कमल बालक कामदेवोंका लालन करते हों॥ ६४ ॥

मनसिज मनोहर मधुर मूरति कस न सादर जोवहू।
बिनु काज राज समाज महुँ तजि लाज आपु बिगोवहू॥
सिष देइ भूपति साधु भूप अनूप छबि देखन लगे।
रघुबंस कैरव चंद चितइ चकोर जिमि लोचन लगे॥ ८ ॥

'अरे, कामदेवके भी मनको चुरानेवाली इन मधुर मूर्तियोंको तुम सादर क्यों नहीं निहारते ? तुम बिना ही प्रयोजन इस राजसमाजमें लज्जा त्यागकर अपनेको नष्ट करते हो !' राजाओंको ऐसी शिक्षा देकर वे साधुस्वभाव नृपतिगण उनकी अनुपम छबि निरखने लगे। उस समय रघुकुल-कुमुद-चन्द्र श्रीरामजीको देखकर चकोरके समान उनके नेत्र चन्द्रमाको देखनेवाले चकोर पक्षीके समान ठग गये अर्थात् उन्हींकी ओर लगे रह गये ॥ ८ ॥

पुर नर नारि निहारहिं रघुकुल दीपहि।
दोषु नेहबस देहिं बिदेह महीपहि ॥ ६५ ॥
एक कहहिं भल भूप देहु जनि दूषन।
नृप न सोह बिनु बचन नाक बिनु भूषन ॥ ६६ ॥

नगरके स्त्री-पुरुष रघुकुलके दीपक श्रीरामचन्द्रजीको देखते हैं और प्रेमवश महाराज जनकको दोष देते हैं ॥ ६५ ॥ कोई कहते हैं—'महाराज तो बड़े अच्छे हैं, उन्हें दोष मत दो, देखो, वचनके बिना राजा और भूषणके बिना नाक भले नहीं होते ॥ ६६ ॥

हमरें जान जनेस बहुत भल कीन्हेउ।
पन मिस लोचन लाहु सबन्हि कहँ दीन्हेउ ॥ ६७ ॥
अस सुकृती नरनाहु जो मन अभिलाषिहि।
सो पुरइहिं जगदीस परज पन राखिहि ॥ ६८ ॥

'हमारी समझमें तो राजाने बहुत अच्छा किया जो अपनी शर्तके बहाने हम सबको नेत्रोंका फल दिया ॥ ६७ ॥ ऐसे पुण्यात्मा राजा मनमें जो अभिलाषा करेंगे, उसीको जगदीश्वर पूरा कर देंगे और उनकी प्रतिज्ञा एवं शर्तकी रक्षा करेंगे ॥ ६८ ॥

प्रथम सुनत जो राउ राम गुन-रूपहि।
बोलि ब्याहि सिय देत दोष नहिं भूपहि ॥ ६९ ॥
अब करि पइज पंच महँ जो पन त्यागै।
बिधि गति जानि न जाइ अजसु जग जागै ॥ ७० ॥

यदि महाराज [शर्त करनेसे] पहले श्रीरामचन्द्रजीका रूप और गुण सुन लेते तो इन्हें बुलाकर जानकीजीको ब्याह देते। उस समय ऐसा करनेमें महाराजको कोई दोष स्पर्श नहीं करता ॥ ६९ ॥ किंतु अब प्रण करके यदि वे पंचोंमें (जनसमुदायमें) अपना प्रण त्यागते हैं तो विधाताकी गति तो जानी नहीं जाती, किंतु संसारमें तो उनका अपयश फैल ही जायगा ॥ ७० ॥

अजहुँ अवसि रघुनंदन चाप चढ़ाउब।
ब्याह उछाह सुमंगल त्रिभुवन गाउब ॥ ७१ ॥
लागि झरोखन्ह झाँकहिं भूपति भामिनि।
कहत बचन रद लसहिं दमक जनु दामिनि ॥ ७२ ॥

'अब भी श्रीरामचन्द्रजी अवश्य धनुष चढ़ायेंगे और उनके विवाहोत्सवमें त्रिलोकी मङ्गलगान करेगी' ॥ ७१ ॥ इस समय राजमहिलाएँ झरोखोंसे लगकर झाँक रही हैं और बात करते समय उनके दाँत इस प्रकार चमक रहे हैं, जैसे बिजली ॥ ७२ ॥

जनु दमक दामिनि रूप रति मद निदरि सुंदरि सोहहीं।
मुनि ढिग देखाए सखिन्ह कुँवर बिलोकि छबि मन मोहहीं ॥
सिय मातु हरषी निरखि सुषमा अति अलौकिक रामकी।
हिय कहति कहँ धनु कुँअर कहँ बिपरीत गति बिधि बाम की ॥ ९ ॥

[उनके दाँत ऐसे जान पड़ते हैं] मानो बिजली चमक रही हो। वे कामिनियाँ अपने रूपसे रतिके मदका निरादर करती हुई शोभा पा रही हैं। [सखियोंने सुनयनाजीको] मुनिके समीप दोनों कुमारोंको दिखलाया। उनकी छबि देख उनका मन मोहित हो गया। श्रीरामचन्द्रजीकी अत्यन्त अलौकिक शोभाको देख जानकीजीकी माता प्रसन्न हुईं और मन-ही-मन कहने लगीं कि 'कहाँ धनुष और कहाँ ये कुमार ? वाम विधाताकी गति बड़ी विपरीत है' ॥ ९ ॥

कहि प्रिय बचन सखिन्ह सन रानि बिसूरति।
कहाँ कठिन सिव धनुष कहाँ मृदु मूरति ॥ ७३ ॥

जौं बिधि लोचन अतिथि करत नहिं रामहि।
तौ कोउ नृपहि न देत दोषु परिनामहि॥ ७४ ॥

सखियोंसे प्रिय वचन कहकर रानी सोचने लगीं कि कहाँ शिवजीका (कठोर) धनुष और कहाँ यह सुकुमार मूर्ति॥ ७३ ॥ यदि विधाता श्रीरामचन्द्रजीको हमारे नेत्रोंका अतिथि न बनाता तो अन्तमें राजाका कोई दोष न देता॥ ७४ ॥

अब असमंजस भयउ न कछु कहि आवै।
रानिहि जानि ससोच सखी समझावै॥ ७५ ॥
देबि सोच परिहरिय हरष हियँ आनिय।
चाप चढ़ाउब राम बचन फुर मानिय॥ ७६ ॥

'अब तो असमंजसकी बात हो गयी, कुछ कहते नही बनता।' इस प्रकार रानीको सोचवश जानकर सखियाँ समझाने लगीं—'हे देवि ! सोचको त्याग दीजिये। हृदयमें आनन्द मनाइये। यह वचन सत्य मानिये कि धनुषको श्रीरामचन्द्रजी ही चढ़ायेंगे॥ ७५-७६ ॥

तीनि काल को ग्यान कौसिकहि करतल।
सो कि स्वयंबर आनिहिं बालक बिनु बल॥ ७७ ॥
मुनि महिमा सुनि रानिहि धीरजु आयउ।
तब सुबाहु सूदन जसु सखिन्ह सुनायउ॥ ७८ ॥

'कौसिक मुनिको तीनों कालका ज्ञान करतलगत है, क्या वे बिना किसी बलके इन बालकोंको स्वयंवरमें लाते ?'॥ ७७ ॥ मुनिकी महिमा सुनकर रानीको धैर्य हुआ। तब सखियोंने रानीको सुबाहुका वध करनेवाले श्रीरामचन्द्रजीका यश सुनाया॥ ७८ ॥

सुनि जिय भयउ भरोस रानि हिय हरषइ।
बहुरि निरखि रघुबरहि प्रेम मन करषइ॥ ७९ ॥
नृप रानी पुर लोग राम तन चितवहिं।
मंजु मनोरथ कलस भरहिं अरु रितवहिं॥ ८० ॥

यह सुनकर रानीके जीमें भरोसा आया और वे हर्षित हो गयीं। फिर उन्होंने रघुनाथजीकी ओर देखा, इससे उनका मन प्रेमसे आकर्षित हो

गया ॥ ७९ ॥ राजा, रानी और पुरवासीलोग श्रीरामचन्द्रजीकी ओर देख रहे हैं। वे बार-बार मनोहर मनोरथरूपी कलश भरते हैं और उसे खाली कर देते हैं (अर्थात् आशा और निराशाके झूलेमें झूल रहे हैं) ॥ ८० ॥

रितवहिं भरहिं धनु निरखि छिनु-छिनु निरखि रामहि सोचहीं।
नर नारि हरष बिषाद बस हिय सकल सिवहिं सकोचहीं॥
तब जनक आयसु पाइ कुलगुर जानकिहि लै आयऊ।
सिय रूप रासि निहारि लोचन लाहु लोगन्हि पायऊ॥ १० ॥

धनुषको देखकर वे क्षण-क्षणमें मनोरथरूपी कलशको भरते और खाली करते हैं और श्रीरामचन्द्रजीको देखकर सोच करते हैं; समस्त स्त्री-पुरुष हर्ष और विषादवश हृदयमें शिवजीको संकुचित करते हैं (अर्थात् प्रार्थना करके उनसे यह मनाते हैं कि श्रीरामचन्द्रजी उन्हींका धनुष तोड़नेमें समर्थ हों) तब महाराज जनककी आज्ञा पाकर कुलगुरु शतानन्दजी जानकीजीको ले आये। उस समय रूपराशि श्रीजानकीजीको देखकर सब लोगोंने नेत्रोंका फल पाया॥ १० ॥

मंगल भूषन बसन मंजु तन सोहहिं।
देखि मूढ़ महिपाल मोह बस मोहहिं॥ ८१ ॥
रूप रासि जेहि ओर सुभायँ निहारइ।
नील कमल सर श्रेनि मयन जनु डारइ॥ ८२ ॥

श्रीजानकीजीके सुन्दर शरीरमें मङ्गलमय (विवाहोचित) वस्त्र और आभूषण सुशोभित हैं। उन्हें देखकर मूर्ख राजालोग मोहवश मोहित हो जाते हैं॥ ८१ ॥ रूपकी राशि श्रीजानकीजी जिस ओर स्वभावसे ही निहारती हैं, उसी ओर मानो कामदेव नील कमलके बाणोंकी झड़ी लगा देता है॥ ८२ ॥

छिनु सीतहि छिनु रामहि पुरजन देखहिं।
रूप सील बय बंस बिसेष बिसेषहिं॥ ८३ ॥
राम दीख जब सीय सीय रघुनायक।
दोउ तन तकि तकि मयन सुधारत सायक॥ ८४ ॥

पुरवासीलोग एक क्षण जानकीजीको और दूसरे क्षण श्रीरामचन्द्रजीको निहारते हैं। वे उनके रूप, शील, अवस्था और वंशकी विशेषताका विशेषरूपसे वर्णन करते हैं॥ ८३ ॥ जब श्रीरामचन्द्रजीको जानकीजीने और जानकीजीको श्रीरामचन्द्रजीने देखा, तब दोनोंकी ओर देख-देखकर कामदेव अपने बाण सुधारने लगा॥ ८४ ॥

प्रेम प्रमोद परस्पर प्रगटत गोपहिं।
जनु हिरदय गुन ग्राम थूनि थिर रोपहिं॥ ८५ ॥
राम सीय बय समौ सुभाय सुहावन।
नृप जोबन छबि पुरइ चहत जनु आवन॥ ८६ ॥

श्रीरामचन्द्रजी और जानकीजी परस्पर प्रकट होते हुए प्रेमानन्दको छिपाते हैं, मानो वे अपने हृदयमें एक दूसरेके गुण-गणरूपी स्तम्भको स्थिरतापूर्वक गाड़ते हैं॥ ८५ ॥ श्रीरामचन्द्रजी और जानकीजीकी अवस्थाका समय भी स्वभावसे ही शोभायमान है, मानो इस समय यौवनरूपी राजा छबिरूपी नगरीमें प्रवेश करना चाहता है॥ ८६ ॥

सो छबि जाइ न बरनि देखि मनु मानै।
सुधा पान करि मूक कि स्वाद बखानै॥ ८७॥
तब बिदेह पन बंदिन्ह प्रगट सुनायउ।
उठे भूप आमरषि सगुन नहिं पायउ॥ ८८॥

उस शोभाका वर्णन नहीं किया जा सकता; उसे तो देखनेसे ही मन प्रसन्न होता है। क्या गूँगा अमृत-पान करके उसके स्वादको कह सकता है?॥ ८७ ॥ तब बंदीजनोंने महाराज जनककी शर्तको स्पष्ट करके सुनाया। उसे सुनकर राजालोग जोशमें आकर उठे, परंतु कोई शकुन नहीं बना॥ ८८ ॥

नहि सगुन पायउ रहे मिसु करि एक धनु देखन गए।
टकटोरि कपि ज्यों नारियरु, सिरु नाइ सब बैठत भए॥
एक करहिं दाप, न चाप सज्जन बचन जिमि टारें टरै।
नृप नहुष ज्यों सब कें बिलोकत बुद्धि बल बरबस हरै॥ ११ ॥

जब राजाओंको शुभ शकुन नहीं मिला, तब वे बहाना बनाकर बैठ गये। उनमेंसे कोई धनुष देखनेके लिये गये और जैसे बंदर नारियलको टटोलकर छोड़ देता है, वैसे ही वे सब धनुषको टटोलकर सिर नीचा करके बैठ गये। कोई-कोई बड़े जोशमें आते हैं, परंतु सत्पुरुषोंके वचनोंके समान धनुष टाले नहीं टलता। इस प्रकार राजा नहुषके समान * उनके बुद्धि और बल सबके देखते-देखते बरबस क्षीण हो गये॥ ११ ॥

धनुर्भङ्ग

देखि सपुर परिवार जनक हिय हारेउ।
नृप समाज जनु तुहिन बनज बन मारेउ॥ ८९ ॥
कौसिक जनकहि कहेउ देहु अनुसासन।
देखि भानु कुल भानु इसानु सरासन॥ ९० ॥

पुरवासी एवं परिवारके सहित महाराज जनक यह देखकर हृदयमें हार गये अर्थात् निराश हो गये और राजाओंके समाजरूपी कमलवनको तो मानो पाला मार गया॥ ८९ ॥ (तब) कौशिक मुनिने महाराज जनकसे कहा—'आप आज्ञा दीजिये। सूर्यकुलके सूर्य श्रीरामचन्द्रजी शङ्करजीके धनुषको देखें'॥ ९० ॥

मुनिबर तुम्हरें बचन मेरु महि डोलहिं।
तदपि उचित आचरत पाँच भल बोलहिं॥ ९१ ॥
बानु बानु जिमि गयउ गवहिं दसकंधरु।
को अवनी तल इन सम बीर धुरंधरु॥ ९२ ॥

(महाराज जनकने कहा—) 'हे मुनिवर! आपके वचनसे पर्वत और पृथ्वी भी डोल सकते हैं; तो भी उचित आचरण करनेसे सब लोग प्रशंसा करते हैं। (तात्पर्य यह कि यद्यपि आपके आशीर्वादसे श्रीरामके लिये यह धनुष तोड़ना कोई बड़ी बात नहीं है, फिर भी जैसी वस्तुस्थिति

* जब अपने पुण्यके प्रतापसे राजा नहुषको इन्द्रपद प्राप्त हुआ, तब उसके मदमें उनकी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी। उन्होंने इन्द्राणीको भोगनेकी इच्छा प्रकट की और उसका संदेश पाकर ऋषियोंको शिविकामें जोड़कर चले। उनमें इस प्रकारके अनौचित्यका विचार करनेकी भी बुद्धि न रही। अन्तमें अगस्त्य ऋषिके शापसे वे तत्काल अजगर हो गये।

है, उसे देखते हुए तो ऐसा होना असम्भव ही जान पड़ता है; क्योंकि देखिये, इस धनुषको देखकर) बाणासुर बाणके समान भाग गया और रावण भी चुपकेसे (अपने घर) चला गया। भला इनके समान धुरंधर वीर पृथ्वीतलमें कौन है॥ ९१-९२ ॥

पारबती मन सरिस अचल धनु चालक।
हहिं पुरारि तेउ एक नारि ब्रत पालक॥ ९३ ॥
सो धनु कहिय बिलोकन भूप किसोरहि।
भेद कि सिरिस सुमन कन कुलिस कठोरहि॥ ९४ ॥

'यह धनुष तो पार्वतीजीके मनके समान अचल है, इसे विचलित करनेवाले तो बस एक महादेवजी ही हैं, किंतु वे भी एकनारी व्रतका पालन करनेवाले हैं॥ ९३ ॥ ऐसे धनुषको आप इन राजकुमारको देखनेके लिये कहते हैं। भला, कहीं सिरसका अत्यन्त कोमल फूल कठोर वज्रके कणको भी भेद सकता है॥ ९४ ॥

रोम रोम छबि निंदति सोभ मनोजनि।
देखिय मूरति मलिन करिय मुनि सो जनि॥ ९५ ॥
मुनि हँसि कहेउ जनक यह मूरति सोहइ।
सुमिरत सकृत मोह मल सकल बिछोहइ॥ ९६ ॥

श्रीरामचन्द्रजीकी रोम-रोमकी शोभा अनेक कामदेवोंकी छबिका भी तिरस्कार करनेवाली है। हे मुने! ऐसा न कीजिये कि यह मूर्ति मलिन देखी जाय [क्योंकि यदि इनसे धनुष न टूटा तो इनकी यह प्रसन्नता नष्ट हो जायगी]'॥ ९५ ॥ मुनिने हँसकर कहा, हे जनक! यह मूर्ति जो शोभायमान हो रही है, वह एक बार स्मरण करनेसे भी सम्पूर्ण अज्ञानान्धकारको दूर कर देनेवाली है॥ ९६ ॥

सब मल बिछोहनि जानि मूरति जनक कौतुक देखहू।
धनु सिंधु नृप बल जल बढ़यो रघुबरहि कुंभज लेखहू॥
सुनि सकुचि सोचहिं जनक गुर पद बंदि रघुनंदन चले।
नहिं हरष हृदय बिषाद कछु भए सगुन सुभ मंगल भले॥ १२ ॥

'हे जनक ! इस मूर्तिको सब प्रकारके मलोंको छुड़ानेवाली जानकर यह कौतुक देखो। धनुषरूपी समुद्रमें राजाओंका बलरूपी जल बढ़ा हुआ है, [उसे सुखानेके लिये] रघुनाथजीको अगस्त्यके समान जानो।' यह सुनकर राजा जनक सकुचाकर सोचने लगे और [उधर] श्रीरामचन्द्रजी गुरुके चरणोंको प्रणाम करके चले। इस समय उनके हृदयमें हर्ष या विषाद कुछ भी नहीं था। [उनके चलते समय] बहुत-से शुभ और कल्याणसूचक अच्छे शकुन हुए॥ १२ ॥

बरिसन लगे सुमन सुर दुंदुभि बाजहिं।
मुदित जनक, पुर परिजन नृपगन लाजहिं॥ ९७ ॥
महि महिधरनि लखन कह बलहि बढ़ावनु।
राम चहत सिव चापहि चपरि चढ़ावनु॥ ९८ ॥

देवतालोग फूल बरसाने और नगारे बजाने लगे; राजा जनक, उनके परिवारके लोग तथा पुरवासी आनन्दित हो गये और राजालोग लजा गये॥ ९७ ॥ लक्ष्मणजी पृथ्वी और शेषादिसे बल बढ़ानेके लिये कहते हैं; क्योंकि अब शीघ्र ही श्रीरामचन्द्रजी शिवजीके धनुषको चढ़ाना चाहते हैं॥ ९८ ॥

गए सुभायँ राम जब चाप समीपहि।
सोच सहित परिवार बिदेह महीपहि॥ ९९ ॥
कहि न सकति कछु सकुचति सिय हियँ सोचइ।
गौरि गनेस गिरीसहि सुमिरि सकोचइ॥ १०० ॥

जब श्रीरामचन्द्रजी सहज भावसे धनुषके समीप गये, तब परिवारसहित राजा जनक सोचमें पड़ गये॥ ९९ ॥ संकोचवश जानकीजी कुछ कह नहीं पातीं, मन-ही-मन सोच करती हैं और पार्वती, गणेश तथा महादेवजीका स्मरण करके उन्हें संकोचमें डाल रही हैं॥ १०० ॥

होत बिरह सर मगन देखि रघुनाथहि।
फरकि बाम भुज नयन देत जनु हाथहि॥ १०१ ॥
धीरज धरति सगुन बल रहति सो नाहिन।
बरु किसोर धनु घोर दइउ नहिं दाहिन॥ १०२ ॥

श्रीरामचन्द्रजीको देखकर वे विरहके सरोवरमें डूब रही हैं। उस समय उनके बाम भुजा और नेत्र फड़ककर मानो डूबनेसे बचानेके लिये हाथ बढ़ाते हैं॥ १०१ ॥ इस प्रकार शकुनके बलसे कुछ धीरज धरती हैं; परंतु वह स्थिर नहीं रहता। [वे सोचने लगती हैं कि] 'वर तो किशोरावस्थाके हैं और धनुष विकराल है। इस समय विधाता भी अनुकूल नहीं है' ॥ १०२ ॥

अंतरजामी राम मरम सब जानेउ।
धनु चढ़ाइ कौतुकहिं कान लगि तानेउ॥ १०३ ॥
प्रेम परखि रघुबीर सरासन भंजेउ।
जनु मृगराज किसोर महागज भंजेउ॥ १०४ ॥

अन्तर्यामी श्रीरामचन्द्रजीने जानकीजीका सारा मर्म जान लिया (अर्थात् वे श्रीजानकीजीके मनका दुःख समझ गये)। बस उन्होंने कौतुकसे ही धनुषको चढ़ाकर कानतक तान लिया॥ १०३ ॥ श्रीजानकीजीके प्रेमको परखकर श्रीरामचन्द्रजीने धनुषको उसी प्रकार तोड़ दिया, जैसे कोई सिंहका बच्चा बड़े भारी हाथीको मार डाले॥ १०४ ॥

गंजेउ सो गर्जेउ घोर धुनि सुनि भूमि भूधर लरखरे।
रघुबीर जस मुकता बिपुल सब भुवन पटु पेटक भरे॥
हित मुदित अनहित रुदित मुख छबि कहत कबि धनु जाग की।
जनु भोर चक्क चकोर कैरव सघन कमल तड़ाग की॥ १३ ॥

धनुषको जब तोड़ा गया, तब उसका ऐसा घोर गर्जन हुआ कि उसे सुनकर पृथ्वी और पर्वत डगमगा गये। श्रीरामचन्द्रजीके सुयशरूपी बहुत-से मोतियोंसे समस्त भुवन-मण्डलरूप सुन्दर पिटारे भर गये। (अर्थात् चौदहों भुवनमें उनका सुयश व्याप्त हो गया) इससे मित्र लोग आनन्दित हुए और शत्रुओंका मुख रुआँसा हो गया। उस समयकी धनुष-यज्ञकी छबिको कवि इस प्रकार वर्णन करता है कि प्रातःकाल चकवा-चकवी, कुमुदिनी और सघन कमलवनसे युक्त तालाबकी जैसी शोभा होती है, वैसी ही उस यज्ञकी हुई (भाव यह कि शत्रुलोग तो चकोर और कुमुदिनियोंके समान निस्तेज हो गये और सत्पुरुष चकवा-चकवी

एवं कमलवनके समान प्रफुल्लित हो गये) ॥ १३ ॥

नभ पुर मंगल गान निसान गहागहे।
देखि मनोरथ सुरतरु ललित लहालहे॥ १०५॥
तब उपरोहित कहेउ सखीं सब गावन।
चलीं लेवाइ जानकिहि भा मन भावन॥ १०६॥

मनोरथरूपी सुन्दर कल्पवृक्षको लहलहाते देखकर नगर और आकाशमें आनन्दपूर्वक मङ्गल-गान और नगारोंका शब्द होने लगा॥ १०५ ॥ तब पुरोहित (शतानन्दजी)ने समस्त सखियोंको गानेकी आज्ञा दी और वे [गाती हुई] श्रीजानकीजीको लिवाकर चलीं। इस प्रकार जानकीजीका मनमाना हो गया॥ १०६ ॥

कर कमलनि जयमाल जानकी सोहइ।
बरनि सकै छबि अतुलित अस कबि कोहइ॥ १०७ ॥
सीय सनेह सकुच बस पिय तन हेरइ।
सुरतरु रुख सुरबेलि पवन जनु फेरइ॥ १०८ ॥

जानकीजीके करकमलोंमें जयमाला शोभा दे रही है; भला ऐसा कौन कवि है, जो उस अतुलित छबिका वर्णन कर सके॥ १०७ ॥ जानकीजी प्रेम और संकोचवश प्रियतमकी ओर देखती हैं, मानो वायु कल्पलताको कल्पवृक्षकी ओर घुमा रहा है॥ १०८ ॥

लसत ललित कर कमल माल पहिरावत।
काम फंद जनु चंदहि बनज फँसावत॥ १०९ ॥
राम सीय छबि निरुपम निरुपम सो दिनु।
सुख समाज लखि रानिन्ह आनँद छिनु-छिनु॥ ११० ॥

जयमाल पहनाते समय उनके सुन्दर करकमल ऐसे सुशोभित जान पड़ते हैं मानो कमल कामदेवके फंदेमें चन्द्रमाको फँसाते हों॥ १०९ ॥ श्रीराम और जानकीजीकी अनुपम शोभा और वह दिन भी अनुपम था। उस सुख-समाजको देखकर रानियोंको क्षण-क्षणमें आनन्द हो रहा था॥ ११० ॥

प्रभुहि माल पहिराइ जानकिहि लै चलीं।
सखीं मनहुँ बिधु उदय मुदित कैरव कलीं॥ १११ ॥
बरषहिं बिबुध प्रसून हरषि कहि जय जए।
सुख सनेह भरे भुवन राम गुर पहँ गए॥ ११२ ॥

श्रीरामचन्द्रजीको माला पहिनाकर सखियाँ जानकीजीको लिवा चलीं; वे ऐसी प्रफुल्लित हो रही हैं जैसे चन्द्रमाका उदय होनेसे कुमुदिनीकी कलियाँ खिल उठती हैं॥ १११ ॥ देवता लोग आनन्दित होकर जय-जयकार करते हुए फूल बरसाते हैं। उस समय सारे भुवन सुख और स्नेहसे भर गये और श्रीरामचन्द्रजी गुरुके पास गये॥ ११२ ॥

गए राम गुरु पहिं राउ रानी नारि-नर आनँद भरे।
जनु तृषित करि करिनी निकर सीतल सुधासागर परे॥
कौसिकहि पूजि प्रसंसि आयसु पाइ नृप सुख पायऊ।
लिखि लगन तिलक समाज सजि कुल गुरहि अवध पठायऊ॥ १४ ॥

श्रीरामचन्द्रजी गुरुके यहाँ गये। राजा-रानी, स्त्री-पुरुष—सब उसी प्रकार आनन्दसे भर गये, मानो प्यासे हाथी-हथिनियोंका झुंड शीतल अमृत-सागरमें जा गिरा हो। कौशिक मुनिकी पूजा और प्रशंसा करके उनकी आज्ञा पा राजा सुखी हुए तथा लग्न लिखकर तिलककी सामग्री सजा अपने कुलगुरु (शतानन्दजी) को अयोध्या भेजा॥ १४ ॥

गुनि गन बोलि कहेउ नृप माँडव छावन।
गावहिं गीत सुआसिनि बाज बधावन॥ ११३ ॥
सीय राम हित पूजहिं गौरि गनेसहि।
परिजन पुरजन सहित प्रमोद नरेसहि॥ ११४ ॥

राजाने गुणी लोगोंको बुलाकर मण्डप छानेकी आज्ञा दी। सुवासिनियाँ (सुहागिनी लड़कियाँ) गीत गाने लगीं और बधावा बजने लगा॥ ११३ ॥ श्रीरामचन्द्रजी और जानकीजीके लिये वे गौरी और गणेशकी पूजा करती हैं। [इस प्रकार] सभी परिवारके लोगों एवं पुरजनोंके सहित राजाको परम आनन्द हो रहा है॥ ११४ ॥

प्रथम हरदि बंदन करि मंगल गावहिं।
करि कुल रीति कलस थपि तेलु चढ़ावहिं॥ ११५ ॥

पहले हरिद्रा-वन्दन करके अर्थात् हल्दी चढ़ाकर मङ्गल-गान करती हैं और कुलकी रीति करके कलश-स्थापन कर तेल चढ़ाती हैं॥ ११५ ॥

विवाहकी तैयारी

गे मुनि अवध बिलोकि सुसरित नहायउ।
सतानंद सत कोटि नाम फल पायउ॥ ११६ ॥

[इधर] मुनि (शतानन्द) ने अयोध्या पहुँचकर सरयूमें स्नान किया और सौ करोड़ नाम जपनेका फल पाया॥ ११६ ॥

नृप सुनि आगे आइ पूजि सनमानेउ।
दीन्हि लगन कहि कुसल राउ हरषानेउ॥ ११७ ॥
सुनि पुर भयउ अनंद बधाव बजावहिं।
सजहिं सुमंगल कलस बितान बनावहिं॥ ११८ ॥

शतानन्द मुनिका आगमन सुनकर महाराज (दशरथ) आगे आये और पूजा करके उनका सम्मान किया। फिर मुनिने कुशल सुनाकर उन्हें लग्नपत्रिका दी। [इससे] राजा दशरथ बहुत हर्षित हुए॥ ११७ ॥ इस समाचारको सुनकर नगरमें बड़ा आनन्द हुआ और बधावे बजने लगे। सब ओर [विवाहार्थ] मङ्गल-कलश सजाये जाने लगे और जहाँ-तहाँ वितान (चाँदनियाँ) ताने गये॥ ११८ ॥

राउ छाँड़ि सब काज साज सब साजहिं।
चलेउ बरात बनाइ पूजि गनराजहिं॥ ११९ ॥
बाजहिं ढोल निसान सगुन सुभ पाइन्हि।
सिय नैहर जनकौर नगर नियराइन्हि॥ १२० ॥

महाराज (दशरथ) [अन्य] सब कामोंको छोड़कर बरातका सामान सजाने लगे और बरात बनाकर गणेशजीका पूजन करके चल पड़े॥ ११९ ॥ ढोल और नगारे बज रहे हैं और शुभ शकुन हो रहे हैं। इस प्रकार जानकीजीका नैहर जनकौर (जनकपुर) समीप आ गया॥ १२० ॥

नियरानि नगर बरात हरषी लेन अगवानी गए।
देखत परस्पर मिलत मानत प्रेम परिपूरन भए॥
आनंदपुर कौतुक कोलाहल बनत सो बरनत कहाँ।
लै दियो तहँ जनवास सकल सुपास नित नूतन जहाँ॥ १५ ॥

बरात नगरके समीप पहुँच गयी। तब सब लोग प्रसन्न होकर अगवानी लेने (स्वागत करने) गये। सब एक-दूसरेको देखते और मिलते हैं तथा आप्तकाम होकर बड़ा प्रेम मानते हैं। नगरमें बड़ा आनन्द, कौतुक (खेल) और कोलाहल (हल्ला) हो रहा है; उसका वर्णन कहाँ हो सकता है। फिर बरातको ले जाकर जहाँ सब प्रकारका नित्य-नूतन सुभीता था, वहाँ जनवासा दिया (बरातको ठहराया गया)॥ १५ ॥

गे जनवासहिं कौसिक राम लखन लिए।
हरषे निरखि बरात प्रेम प्रमुदित हिए॥ १२१ ॥
हृदयँ लाइ लिए गोद मोद अति भूपहि।
कहि न सकहिं सत सेष अनंद अनूपहि॥ १२२ ॥

कौशिक मुनि श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मणजीको साथ लिये जनवासेमें गये और बरातको देखकर अति आनन्दित हुए, उनका हृदय प्रेमसे प्रफुल्लित था॥ १२१ ॥ महाराजने श्रीराम और लक्ष्मणको हृदयसे लगाकर गोदमें बिठा लिया। उस समय उन्हें अत्यन्त आनन्द हुआ। उस अनुपम आनन्दको सैकड़ों शेष भी वर्णन नहीं कर सकते॥ १२२ ॥

रायँ कौसिकहि पूजि दान बिप्रन्ह दिए।
राम सुमंगल हेतु सकल मंगल किए॥ १२३ ॥
ब्याह बिभूषन भूषित भूषन भूषन।
बिस्व बिलोचन बनज बिकासक पूषन॥ १२४ ॥

महाराज दशरथने कौशिक मुनिकी पूजा करके ब्राह्मणोंको दान दिये और श्रीरामचन्द्रजीके कल्याणके लिये सब प्रकारके माङ्गलिक कृत्य किये। जो संसारके नेत्ररूपी कमलोंको विकसित करनेवाले सूर्यके समान हैं। वे भूषणोंके भूषण श्रीरामचन्द्रजी विवाहके आभूषणोंसे भूषित हैं॥ १२३-१२४ ॥

मध्य बरात बिराजत अति अनुकूलेउ।
मनहुँ काम आराम कलपतरु फूलेउ॥ १२५ ॥
पठई भेंट बिदेह बहुत बहु भाँतिन्ह।
देखत देव सिहाहिं अनंद बरातिन्ह॥ १२६ ॥

वे बरातके मध्यमें अत्यन्त प्रसन्न चित्तसे सुशोभित हैं, ऐसा जान पड़ता है, मानो कामदेवके बागमें कल्पवृक्ष फूला हुआ हो॥ १२५ ॥ महाराज जनकने अनेक प्रकारके बहुत-से उपहार भेजे, जिन्हें देखकर देवता (भी) ईर्ष्या करते हैं और बरातियोंको भी बड़ा आनन्द होता है॥ १२६ ॥

राम-विवाह

बेद बिहित कुलरीति कीन्हि दुहुँ कुलगुर।
पठई बोलि बरात जनक प्रमुदित मन॥ १२७ ॥
जाइ कहेउ पगु धारिअ मुनि अवधेसहि।
चले सुमिरि गुरु गौरि गिरीस गनेसहि॥ १२८ ॥

वसिष्ठजी और शतानन्दजी दोनों कुलगुरुओंने वेदविहित कुलरीति सम्पन्न की तथा महाराज जनकने प्रमुदित मनसे बरातको बुला भेजा॥ १२७ ॥ [तब] शतानन्द मुनिने [जनवासेमें] जाकर अयोध्यापति (महाराज दशरथ)से कहा—'पधारिये' और वे गुरु (वसिष्ठ), गौरी, शिवजी और गणेशजीको स्मरणकर चले॥ १२८ ॥

चले सुमिरि गुर सुर सुमन बरषहिं परे बहुबिधि पावड़े।
सनमानि सब बिधि जनक दसरथ किये प्रेम कनावड़े॥
गुन सकल सम समधी परस्पर मिलन अति आनँद लहे।
जय धन्य जय जय धन्य धन्य बिलोकि सुर नर मुनि कहे॥ १६ ॥

महाराज दशरथ गुरु आदिको स्मरणकर चले; देवतालोग फूल बरसाने लगे और अनेक प्रकारके पाँवड़े पड़ने लगे। महाराज जनकने सब प्रकारसे सम्मानित कर श्रीदशरथजीको अपने प्रेमसे कृतज्ञ बना लिया। सब गुणोंमें तुल्य दोनों समधियोंने परस्पर मिलते समय अत्यन्त आनन्द प्राप्त किया। उन्हें देखकर देवता, मनुष्य और मुनिजन धन्य-धन्य कहते और जय-जयकार कर रहे हैं॥ १६ ॥

नेगचारु कहँ नागरि गहरु न लावहिं।
निरखि निरखि आनंदु सुलोचनि पावहिं॥ १३५ ॥
करि आरती निछावरि बरहि निहारहिं।
प्रेम मगन प्रमदागन तन न सँभारहिं॥ १३६ ॥

वे चतुरा स्त्रियाँ रीति-रस्ममें देरी नहीं लगातीं, बार-बार श्रीरघुनाथजीको देख करके सुलोचना स्त्रियाँ [महान्] आनन्दका अनुभव करती हैं॥ १३५ ॥ आरती और निछावर करके वे दुलहाको निरखती हैं और प्रेममें मग्न हो जानेसे वे प्रेम-मदसे छकी युवती स्त्रियाँ अपने शरीरको भी नहीं सँभाल पातीं॥ १३६ ॥

नहिं तन सम्हारहिं छबि निहारहिं निमिष रिपु जनु रनु जए।
चक्रवै लोचन राम रूप सुराज सुख भोगी भए॥
तब जनक सहित समाज राजहि उचित रुचिरासन दए।
कौसिक बसिष्ठहि पूजि पूजे राउ दै अंबर नए॥ १७ ॥

वे अपने शरीरको नहीं सँभाल पातीं। भगवान्‌की शोभा [एकटक होकर] निहारती हैं। ऐसा जान पड़ता है, मानो उन्होंने पलकरूपी शत्रुओंको रणमें जीत लिया है। इससे उनके नेत्ररूपी चक्रवर्ती राम-छबिरूप सुराज्यके सुखके भोगी हुए हैं। तब जनकजीने समाजसहित महाराज दशरथको सुन्दर आसन दिये और कौसिक मुनि तथा वसिष्ठजीकी पूजा करके नवीन वस्त्र अर्पण कर महाराज दशरथकी पूजा की॥ १७ ॥

देत अरघ रघुबीरहि मंडप लै चलीं।
करहिं सुमंगल गान उमगि आनँद अलीं॥ १३७ ॥
बर बिराज मंडप महँ बिस्व बिमोहइ।
ऋतु बसंत बन मध्य मदनु जनु सोहइ॥ १३८ ॥

[फिर जानकीजीकी कुछ] सखियाँ श्रीरामचन्द्रजीको अर्घ्य देती हुई मण्डपमें लिवा चलीं। वे आनन्दमें उमँगकर मनोहर मङ्गलगान करती हैं॥ १३७ ॥ दूल्हा राम मण्डपमें विराजमान हो संसारको विशेषरूपसे मोहित कर रहे हैं; वे ऐसे भले लगते हैं, मानो वसन्तऋतुमें कामदेव वनके मध्यमें शोभायमान हैं॥ १३८ ॥

कुल बिबहार बेद बिधि चाहिय जहँ जस।
उपरोहित दोउ करहिं मुदित मन तहँ तस ॥ १३९ ॥
बरहि पूजि नृप दीन्ह सुभग सिंहासन।
चलीं दुलहिनिहि ल्याइ पाइ अनुसासन ॥ १४० ॥

जहाँ जिस प्रकारकी वैदिक विधि और कुल-व्यवहारकी आवश्यकता होती है, वहाँ दोनों पुरोहित प्रसन्न-मनसे वैसा ही करते हैं ॥ १३९ ॥ राजा जनकने वरका पूजन करके सुन्दर सिंहासन दिया और सखियाँ आज्ञा पा दुलहिनको लेकर चलीं ॥ १४० ॥

जुबति जुत्थ महँ सीय सुभाइ बिराजइ।
उपमा कहत लजाइ भारती भाजइ ॥ १४१ ॥
दुलह दुलहिनिन्ह देखि नारि नर हरषहिं।
छिनु छिनु गान निसान सुमन सुर बरषहिं ॥ १४२ ॥

स्त्रियोंके झुंडमें जानकीजी स्वभावसे ही शोभा पा रही हैं। सरस्वती उपमा कहनेमें लजाकर भाग जाती हैं ॥ १४१ ॥ दुलहा और दुलहिनको देखकर स्त्री-पुरुष हर्षित होते हैं और क्षण-क्षणमें गीत गाते और नगारे बजाते हुए देवतालोग फूल बरसाते हैं ॥ १४२ ॥

लै लै नाउँ सुआसिनि मंगल गावहिं।
कुँवर कुँवरि हित गनपति गौरि पुजावहिं ॥ १४३ ॥
अगिनि थापि मिथिलेस कुसोदक लीन्हेउ।
कन्या दान बिधान संकलप कीन्हेउ ॥ १४४ ॥

सुवासिनियाँ दूल्हा और दुलहिनका नाम ले-लेकर मङ्गल गाती हैं और कुमार-कुमारीके कल्याणके लिये [उनसे] गणेशजी तथा पार्वतीजीकी पूजा कराती हैं ॥ १४३ ॥ मिथिलापति (महाराज जनक) ने अग्नि-स्थापन करके कुश और जल लिया तथा कन्या-दानकी विधिके लिये संकल्प किया ॥ १४४ ॥

संकल्पि सिय रामहि समरपी सील सुख सोभामई।
जिमि संकरहि गिरिराज गिरिजा हरिहि श्री सागर दई ॥

सिंदूर बंदन होम लावा होन लागी भाँवरीं।
सिल पोहनी करि मोहनी मनहर्‍यो मूरति साँवरीं॥ १८ ॥

महाराज जनकने संकल्प करके शील, सुख और शोभामयी श्रीजानकीजी भगवान् रामको समर्पण कर दीं-[ठीक उसी तरह] जैसे गिरिराज हिमवान्‌ने शंकरजीको पार्वतीजी और सागरने भगवान् श्रीहरिको लक्ष्मीजी समर्पण की थीं। सिंदूर-वन्दन तथा लाजाहोमकी विधि सम्पन्न करके भाँवर होने लगी। फिर सिलपोहनी (अश्मारोहण) विधिकी गयी। [उस समय] भगवान्‌की मन-मोहिनी साँवली मूर्तिने सबके मन हर लिये॥ १८ ॥

एहि बिधि भयो बिबाह उछाह तिहूँ पुर।
देहिं असीस मुनीस सुमन बरषहिं सुर॥ १४५ ॥
मन भावत बिधि कीन्ह मुदित भामिनि भईं।
बर दुलहिनिहि लवाइ सखीं कोहबर गईं॥ १४६ ॥

इस प्रकार विवाह-संस्कार सम्पन्न हुआ और तीनों लोकमें आनन्द छा गया। मुनीश्वर आशीर्वाद देते हैं और देवता फूल बरसाते हैं॥ १४५ ॥ विधाताने जो कुछ हमारे मनको प्रिय लगता था, वही कर दिया—यह सोचकर [सभी] स्त्रियाँ आनन्दित हुईं और फिर [जानकीजीकी] सखियाँ दूल्हा और दुलहिनको लेकर कोहबर (कुलदेवताके स्थान) में गयीं॥ १४६ ॥

निरखि निछावर करहि बसन मनि छिनु छिनु।
जाइ न बरनि बिनोद मोदमय सो दिनु॥ १४७ ॥
सिय भ्राताके समय भोम तहँ आयउ।
दुरीदुरा करि नेगु सुनात जनायउ॥ १४८ ॥

उन्हें निरख-निरखकर वे क्षण-क्षणमें वस्त्र और मणियाँ निछावर करती हैं। विनोद और आनन्दसे पूर्ण उस दिनका वर्णन नहीं किया जा सकता॥ १४७ ॥ जिस समय जानकीजीके भाईकी आवश्यकता हुई, उस समय वहाँ [पृथ्वीका पुत्र] मंगलग्रह [स्वयं] आया और अपनेको छिपाकर सब रीति-रस्म करके अपना सुन्दर सम्बन्ध जनाया॥ १४८ ॥

चतुर नारि बर कुँवरिहि रीति सिखावहिं।
देहिं गारि लहकौरि समौ सुख पावहिं॥ १४९ ॥
जुआ खेलावन कौतुक कीन्ह सयानिन्ह।
जीति हारि मिस देहिं गारि दुहु रानिन्ह॥ १५० ॥

चतुर स्त्रियाँ वर और दुलहिनको कुलरीति सिखाती हैं और लहकौरीकी विधिके समय गाली गाकर सुख मानती हैं॥ १४९ ॥ जुआ खेलानेमें चतुर स्त्रियोंने बड़ा कौतुक किया। वे हार-जीतका बहाना करके [कौसल्या और सुनयना] दोनों रानियोंको गाली देती थीं॥ १५० ॥

सीय मातु मन मुदित उतारति आरति।
को कहि सकइ अनंद मगन भइ भारति॥ १५१ ॥
जुबति जूथ रनिवास रहस बस एहि बिधि।
देखि देखि सिय राम सकल मंगल निधि॥ १५२ ॥

जानकीजीकी माता मनमें आनन्दित हो आरती उतारती हैं। उस आनन्दको कौन कह सकता है। उस समय सरस्वती भी आनन्दमग्न हो रही हैं॥ १५१ ॥ इस प्रकार युवतियोंका झुंड और [सम्पूर्ण] रनिवास समस्त मङ्गलोंकी खानि श्रीराम-जानकीको देख-देखकर आनन्दके वशीभूत हो रहा है॥ १५२ ॥

मंगल निधान बिलोकि लोयन लाह लूटति नागरीं।
दइ जनक तीनिहुँ कुँवरि कुँवर बिबाहि सुनि आनँद भरीं॥
कल्यान मो कल्यान पाइ बितान छबि मन मोहई।
सुरधेनु ससि सुरमनि सहित मानहुँ कलप तरु सोहई॥ १९ ॥

मङ्गलनिधि श्रीराम-जानकीजीको देखकर चतुर स्त्रियाँ नेत्रोंका लाभ लूट रही हैं। महाराज जनकने [सीताजीके सिवा अपनी और भी] तीनों कुमारियोंको (अन्य तीनों) कुमारोंके साथ ब्याह दिया। यह सुनकर सारी प्रजा आनन्दसे भर गयी। इस प्रकार मङ्गलमें मङ्गल पाकर मण्डपकी शोभा मनको मोहने लगी। तीनों जोड़ियोंके साथ वह ऐसा लगता था मानो कामधेनु, चन्द्रमा और चिन्तामणिके सहित कल्पवृक्ष सुशोभित हो॥ १९ ॥

जनक अनुज तनया दोउ परम मनोरम।
जेठि भरत कहँ ब्याहि रूप रति सय सम॥ १५३ ॥
सिय लघु भगिनि लखन कहुँ रूप उजागरि।
लखन अनुज श्रुतकीरति सब गुन आगरि॥ १५४ ॥

महाराज जनकके छोटे भाई (कुशध्वज) की जो परम सुन्दरी कन्याएँ थीं, उनमें बड़ी (माण्डवी) का विवाह भरतजीके साथ हुआ, जो सुन्दरतामें सैकड़ों रतियोंके समान थी॥ १५३ ॥ जानकीकी छोटी बहिन (उर्मिला), लक्ष्मणजीको ब्याही गयी जो रूपके कारण अत्यन्त प्रसिद्ध थी; और लक्ष्मणजीके छोटे भाई शत्रुघ्नजीका विवाह श्रुतिकीर्तिसे हुआ, जो सब गुणोंकी खानि थी॥ १५४ ॥

राम बिबाह समान बिबाह तीनिउ भए।
जीवन फल लोचन फल बिधि सब कहँ दए॥ १५५ ॥
दाइज भयउ बिबिध बिधि जाइ न सो गनि।
दासी दास बाजि गज हेम बसन मनि॥ १५६ ॥

श्रीरामचन्द्रजीके विवाहके समान ही [अन्य] तीनों विवाह [भी] हुए। इस प्रकार विधाताने सभीको जीवनका फल और नेत्रोंका फल दिया॥ १५५ ॥ दासी-दास, घोड़े-हाथी, सोना-वस्त्र और मणि इत्यादि अनेक प्रकारका दहेज दिया गया, जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता॥ १५६ ॥

दान मान परमान प्रेम पूरन किए।
समधी सहित बरात बिनय बस करि लिए॥ १५७ ॥
गे जनवासे राउ संगु सुत सुतबहु।
जनु पाए फल चारि सहित साधन चहु॥ १५८ ॥

दान, आदर-सत्कार और परले-सिरेके प्रेमद्वारा महाराज जनकने सबको परितृप्त कर दिया और सारी बरातके सहित समधी (दशरथजी) को विनयपूर्वक अपने वशीभूत कर लिया॥ १५७ ॥ फिर महाराज संगमें पुत्र और पुत्र-वधुओंको लेकर जनवासेमें गये; [ऐसा लगता था] मानो उन्होंने चारों साधनों-के सहित चारों फल (अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष) प्राप्त कर लिये॥ १५८ ॥

चहु प्रकार जेवनार भई बहु भाँतिन्ह।
भोजन करत अवधपति सहित बरातिन्ह॥ १५९ ॥
देहि गारि बर नारि नाम लै दुहु दिसि।
जेंवत बढ़्यो अनंद सुहावनि सो निसि॥ १६० ॥

तरह-तरहसे (भक्ष्य, भोज्य, चोष्य, लेह्य—) चारों प्रकारका भोजन बनाया गया; बरातियोंके सहित महाराज दशरथ भोजन करने लगे॥ १५९ ॥ सुन्दरी स्त्रियाँ दोनों ओरके नाम ले-लेकर गालियाँ गाने लगीं, भोजन करते समय उनके हृदयमें आनन्दकी बाढ़ आ गयी; इससे वह रात्रि बड़ी ही सुहावनी जान पड़ती थी॥ १६० ॥

सो निसि सोहावनि मधुर गावति बाजने बाजहिं भले।
नृप कियो भोजन पान पाइ प्रमोद जनवासेहि चले॥
नट भाट मागध सूत जाचक जस प्रतापहि बरनहीं।
सानंद भूसुर बृंद मनि गज देत मन करषै नहीं॥ २० ॥

वह रात्रि बड़ी सुहावनी हो गयी। स्त्रियाँ मधुर गान करती थीं। अच्छे-अच्छे बाजे बज रहे थे। इस प्रकार भोजन-पानसे निवृत्त हो महाराज आनन्द प्राप्तकर जनवासेको चले। नट, भाट, मागध, सूत और याचकगण महाराजके सुयश और प्रतापका वर्णन कर रहे थे और ब्राह्मणवृन्दको आनन्दपूर्वक मणि और हाथी आदि देते-देते उनका मन हटता न था, अर्थात् बराबर देते ही रहनेकी इच्छा होती थी॥ २० ॥

बरातकी विदाई

करि करि बिनय कछुक दिन राखि बरातिन्ह।
जनक कीन्ह पहुनाई अगनित भाँतिन्ह॥ १६१ ॥
प्रात बरात चलिहि सुनि भूपति भामिनि।
परि न बिरह बस नींद बीति गइ जामिनि॥ १६२ ॥

महाराज जनकने विनती कर-करके कुछ दिन बरातियोंको रोककर रखा और उनकी असंख्य प्रकारसे पहुनाई की॥ १६१ ॥ महाराजकी रानियोंने जब सुना कि प्रातःकाल बरात चली जायगी, तब भावी वियोगकी चिन्तासे उन्हें नींद न पड़ी और सारी रात बीत गयी॥ १६२ ॥

खरभर नगर नारि नर बिधिहि मनावहिं।
बार बार ससुरारि राम जेहि आवहिं॥ १६३ ॥
सकल चलन के साज जनक साजत भए।
भाइन्ह सहित राम तब भूप-भवन गए॥ १६४ ॥

नगरमें खलबली मच गयी, समस्त स्त्री-पुरुष विधातासे यही मनाते थे कि श्रीरामचन्द्रजी बार-बार ससुराल आया करें॥ १६३ ॥ महाराज जनकने बरातके चलनेका सारा साज सजाया और फिर भाइयोंके सहित श्रीरामचन्द्रजी राजमहलमें गये॥ १६४ ॥

सासु उतारि आरती करहिं निछावरि।
निरखि निरखि हियँ हरषहिं सूरति साँवरि॥ १६५ ॥
मागेउ बिदा राम तब सुनि करुना भरीं।
परिहरि सकुच सप्रेम पुलकि पायन्ह परीं॥ १६६ ॥

सासुएँ आरती उतारकर निछावर करती हैं और उनकी साँवली मूर्तिको देख-देखकर हृदयमें आनन्दित होती हैं॥ १६५ ॥ तब श्रीरामचन्द्रजीने [उन सबसे] विदा माँगी। यह सुनकर वे सब करुणा (शोक) से भर गयीं और संकोच छोड़कर प्रेमपूर्वक उनके चरणोंपर गिर गयीं॥ १६६ ॥

सीय सहित सब सुता सौंपि कर जोरहिं।
बार बार रघुनाथहि निरखि निहोरहिं॥ १६७ ॥
तात तजिय जनि छोह मया राखबि मन।
अनुचर जानब राउ सहित पुर परिजन॥ १६८ ॥

वे जानकीजीके सहित सब पुत्रियोंको (अपने-अपने पतिको) सौंपकर हाथ जोड़ती हैं और बार-बार श्रीरामचन्द्रजीको निहारकर उनसे विनय करती हैं— ॥ १६७ ॥ 'हे तात! आप हमारे प्रति स्नेह न छोड़ियेगा। हृदयमें दया बनाये रखियेगा और पुर तथा पुरजनसहित महाराजको अपना अनुचर समझियेगा॥ १६८ ॥

जन जानि करब सनेह बलि, कहि दीन बचन सुनावहीं।
अति प्रेम बारहिं बार रानी बालिकन्हि उर लावहीं॥

सिय चलत पुरजन नारि हय गय बिहँग मृग ब्याकुल भए।
सुनि बिनय सासु प्रबोधि तब रघुबंस मनि पितु पहिं गए॥ २१ ॥

'हम आपकी बलिहारी जाती हैं, आप अपना सेवक जानकर इनपर स्नेह रखियेगा' यों कहकर रानियाँ दीन वचन सुनाती हैं और अत्यन्त प्रेमसे [चारों] बालिकाओंको बार-बार हृदयसे लगाती हैं। जानकीजीके चलनेपर नगरके पुरुष, स्त्रियाँ, घोड़े, हाथी, पक्षी और मृग—सभी व्याकुल हो गये। [इस प्रकार] सासुओंकी विनय सुनकर और उनको समझाकर श्रीरामचन्द्रजी पिताजीके पास गये॥ २१ ॥

परे निसानहि घाउ राउ अवधहिं चले।
सुर गन बरषहिं सुमन सगुन पावहिं भले॥ १६९ ॥
जनक जानकिहि भेटि सिखाइ सिखावन।
सहित सचिव गुर बंधु चले पहुँचावन॥ १७० ॥

नगारोंपर चोट पड़ने लगी और महाराज दशरथ अयोध्याके लिये चल पड़े। देवगण फूल बरसाते हैं और अच्छे-अच्छे (शुभसूचक) सगुन होते हैं॥ १६९ ॥ जनकजीने जानकीजीसे मिलकर उन्हें शिक्षा दी और मन्त्री, गुरु तथा भाईके सहित उन्हें पहुँचाने चले॥ १७० ॥

प्रेम पुलकि कहि राय फिरिय अब राजन।
करत परस्पर बिनय सकल गुन भाजन॥ १७१ ॥
कहेउ जनक कर जोरि कीन्ह मोहि आपन।
रघुकुल तिलक सदा तुम उथपन थापन॥ १७२ ॥

महाराज दशरथने प्रेमसे पुलकित होकर कहा—'राजन्! अब आप लौट जाइये।' फिर समस्त गुणोंके पात्र दोनों महाराज परस्पर विनय करने लगे॥ १७१ ॥ महाराज जनकने हाथ जोड़कर कहा—'आपने मुझे अपना लिया, हे रघुकुलतिलक! आप सदा ही उजड़ोंको बसानेवाले हैं॥ १७२ ॥

बिलग न मानब मोर जो बोलि पठायउँ।
प्रभु प्रसाद जसु जानि सकल सुख पायउँ॥ १७३ ॥

पुनि बसिष्ठ आदिक मुनि बंदि महीपति।
गहि कौसिक के पाइ कीन्ह बिनती अति॥ १७४ ॥

मैंने आपको बुला भेजा—'मेरे इस व्यवहारसे बुरा न मानियेगा। प्रभु (आप) की [ही] कृपासे आपका सुयश जानकर मैंने सब प्रकारका सुख पाया है' ॥ १७३ ॥ फिर महाराजने वसिष्ठ आदि मुनियोंकी वन्दना करके श्रीविश्वामित्रजीके चरण पकड़कर अत्यन्त विनती की ॥ १७४ ॥

भाइन्ह सहित बहोरि बिनय रघुबीरहि।
गदगद कंठ नयन जल उर धरि धीरहि॥ १७५ ॥
कृपा सिंधु सुख सिंधु सुजान सिरोमनि।
तात समय सुधि करबि छोह छाड़ब जनि॥ १७६ ॥

महाराज जनक फिर भाइयोंके साथ श्रीरामचन्द्रजीसे विनय करने लगे। आनन्दसे उनका कण्ठ भर आया, नेत्रोंमें जल उमड़ आया और हृदयमें धीरज धरकर कहने लगे, हे कृपासिन्धु, हे सुखसागर, हे सुजान-शिरोमणि, हे तात! समय-समयपर आप हमारी याद करते रहियेगा। [हमारे प्रति] स्नेह न त्यागियेगा' ॥ १७५-१७६ ॥

जनि छोह छाड़ब बिनय सुनि रघुबीर बहु बिनती करी।
मिलि भेटि सहित सनेह फिरेउ बिदेह मन धीरज धरी॥
सो समौ कहत न बनत कछु सब भुवन भरि करुना रहे।
तब कीन्ह कोसलपति पयान निसान बाजे गहगहे॥ २२ ॥

'स्नेह न छोड़ियेगा'—इस विनयको सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने बहुत विनती की और महाराज जनक [सबसे] प्रेमसहित मिल-भेंटकर तथा मनमें धीरज धारणकर लौट आये। उस अवसरके विषयमें कुछ कहते नहीं बनता; सम्पूर्ण लोक करुणा (शोक) से भर गये। तब कोसलपति महाराज दशरथने प्रस्थान किया और आनन्दपूर्वक नगारे बजने लगे॥ २२ ॥

पंथ मिले भृगुनाथ हाथ फरसा लिए।
डाटहिं आँखि देखाइ कोप दारुन किए॥ १७७ ॥
राम कीन्ह परितोष रोष रिस परिहरि।
चले सौंप सारंग सुफल लोचन करि॥ १७८ ॥

मार्गमें भृगुनाथ (परशुरामजी) हाथमें फरसा लिये मिले। वे आँख दिखाकर तीव्र क्रोधकी मुद्रा धारण किये डाँटने लगे॥ १७७ ॥ किंतु श्रीरामचन्द्रजीने परशुरामजीको संतुष्ट किया और वे रोष एवं अमर्षको त्यागकर भगवान्‌को धनुष सौंप अपने नेत्रोंको सुफल करके चले गये॥ १७८ ॥

रघुबर भुज बल देखि उछाह बरातिन्ह।
मुदित राउ लखि सनमुख बिधि सब भाँतिन्ह॥ १७९ ॥

श्रीरामचन्द्रजीके बाहुबलको देखकर बरातियोंको बड़ा हर्ष हुआ और विधाताको सब प्रकार सम्मुख अर्थात् अनुकूल जानकर महाराज दशरथ प्रसन्न हुए॥ १७९ ॥

अयोध्यामें आनन्द

एहि बिधि ब्याहि सकल सुत जग जसु छायउ।
मग लोगन्हि सुख देत अवधपति आयउ॥ १८० ॥

इस प्रकार सब पुत्रोंका ब्याह करके उन्होंने समस्त संसारमें अपने सुयशका विस्तार किया और [फिर] रास्तेमें लोगोंको सुख देते हुए अवधपति दशरथजी [अपनी राजधानीको] लौट आये॥ १८० ॥

होहिं सुमंगल सगुन सुमन सुर बरषहिं।
नगर कोलाहल भयउ नारि नर हरषहिं॥ १८१ ॥
घाट बाट पुर द्वार बजार बनावहिं।
बीथीं सींचि सुगंध सुमंगल गावहिं॥ १८२ ॥

सुन्दर मङ्गलमय शकुन हो रहे हैं, देवता फूल बरसाते हैं। नगरमें कोलाहल हो गया, समस्त स्त्री-पुरुष आनन्दित हो रहे हैं॥ १८१ ॥ वे घाट, बाट, पुर, द्वार और बाजारोंको सुसज्जित करते हैं और गलियोंको सुगन्धसे सींचकर सुमङ्गल गाते हैं॥ १८२ ॥

चौकैं पूरैं चारु कलस ध्वज साजहिं।
बिबिधि प्रकार गहागह बाजन बाजहिं॥ १८३ ॥
बंदनवार बितान पताका घर घर।
रोपे सफल सपल्लव मंगल तरुबर॥ १८४ ॥

सुन्दर चौक पूरकर कलश और ध्वजाएँ सजाते हैं। अनेक प्रकारके आनन्दमय बाजे बज रहे हैं॥ १८३ ॥ घर-घरमें वन्दनवार, पताका और चँदोवे विराजमान हैं तथा फल और पल्लवोंके सहित मङ्गलमय वृक्ष लगाये गये हैं॥ १८४ ॥

मंगल बिटप मंजुल बिपुल दधि दूब अच्छत रोचना।
भरि थार आरति सजहिं सब सारंग सावक लोचना॥
मन मुदित कौसल्या सुमित्रा सकल भूपति-भामिनी।
सजि साजु परिछन चलीं रामहि मत्त कुंजर गामिनी॥ २३ ॥

बहुत-से सुन्दर मङ्गलमय वृक्ष लगाये गये हैं, मृगशावकके-से नेत्रोंवाली समस्त स्त्रियाँ थालोंमें दही, दूब, अक्षत और गोरोचन भरकर आरती सजाती हैं तथा कौसल्या, सुमित्रा आदि सम्पूर्ण राजमहिषियाँ मनमें अत्यन्त आनन्दित हैं। मतवाले हाथियोंकी-सी चालसे चलनेवाली वे महारानियाँ सब सामग्री सजाकर श्रीरामचन्द्रजीका परिछन करने चलीं॥ २३ ॥

बधुन सहित सुत चारिउ मातु निहारहिं।
बारहिं बार आरती मुदित उतारहिं॥ १८५ ॥
करहिं निछावरि छिनु छिनु मंगल मुद भरीं।
दूलह दुलहिनिन्ह देखि प्रेम पयनिधि परीं॥ १८६ ॥

माताएँ वधुओंके सहित चारों पुत्रोंको निहारती हैं और प्रसन्न होकर बारंबार उनकी आरती उतारती हैं॥ १८५ ॥ वे क्षण-क्षणमें मङ्गल और आनन्दसे भरकर उनकी निछावर करती हैं और दूल्हा-दुलहिनोंको देखकर प्रेमके समुद्रमें डूब गयी हैं॥ १८६ ॥

देत पावड़े अरघ चलीं लै सादर।
उमगि चलेउ आनंद भुवन भुईं बादर॥ १८७ ॥
नारि उहारु उघारि दुलहिनिन्ह देखहिं।
नैन लाहु लहि जनम सफल करि लेखहिं॥ १८८ ॥

वे पावड़ें बिछाती और अर्घ्य देती हुई उन्हें आदरपूर्वक लिवा चलीं। उस समय समस्त लोकोंमें तथा पृथ्वी एवं आकाशमें आनन्द उमड़ चला।

स्त्रियाँ ओहार अर्थात् पर्दा उठाकर दुलहिनियोंको देखती हैं और नेत्रोंका लाभ पाकर जन्मको सफल समझती हैं॥ १८७-१८८ ॥

भवन आनि सनमानि सकल मंगल किए।
बसन कनक मनि धेनु दान बिप्रन्ह दिए॥ १८९ ॥
जाचक कीन्ह निहाल असीसहिं जहँ तहँ।
पूजे देव पितर सब राम उदय कहँ॥ १९० ॥

उन्हें सम्मानपूर्वक राजमहलमें लाकर सब प्रकारके मङ्गलकृत्य किये और ब्राह्मणोंको वस्त्र, सोना, मणि और गौएँ दान कीं॥ १८९ ॥ याचकोंको (मनमाना दान देकर) निहाल कर दिया। वे जहाँ-तहाँ आशीर्वाद देते हैं और श्रीरामचन्द्रजीकी उन्नतिके लिये देवता और पितृगण सभीका पूजन किया गया॥ १९० ॥

नेगचार करि दीन्ह सबहि पहिरावनि।
समधी सकल सुआसिनि गुरतिय पावनि॥ १९१ ॥
जोरीं चारि निहारि असीसत निकसहिं।
मनहुँ कुमुद बिधु-उदय मुदित मन बिकसहिं॥ १९२ ॥

रीतिके अनुसार नेग-चार करके अपने सम्बन्धियोंको, सब सुवासिनियोंको, अपनेसे बड़ी स्त्रियोंको और पौनियों (अपने आश्रित निम्न जातिकी स्त्रियों) को पहिरावनी दी॥ १९१ ॥ वे सब [वर-दुलहिनोंकी] चारों जोड़ियोंको आशीर्वाद देती हुई निकलती हैं और मनमें ऐसी प्रसन्न होती हैं जैसे चन्द्रमाके उदय होनेपर कुमुदिनियाँ आनन्दसे खिल उठती हैं॥ १९२ ॥

बिकसहिं कुमुद जिमि देखि बिधु भइ अवध सुख सोभामई।
एहि जुगुति राम बिबाह गावहिं सकल कबि कीरति नई॥
उपबीत ब्याह उछाह जे सिय राम मंगल गावहीं।
तुलसी सकल कल्यान ते नर नारि अनुदिन पावहीं॥ २४ ॥

जैसे चन्द्रमाको देखकर कुमुदिनियाँ खिल उठती हैं वैसे ही सब स्त्रियाँ आनन्दित हैं। उस समय अयोध्या सुखी और शोभामयी हो रही है। इस प्रकार श्रीरामचन्द्रजीके विवाहकी सुन्दर नवीन कीर्तिको कवि लोग गाते हैं।

जो लोग भगवान्‌के यज्ञोपवीत और श्रीसीतारामके विवाहोत्सवसम्बन्धी मङ्गलका गान करते हैं, गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं कि वे स्त्री-पुरुष दिनोंदिन सब प्रकारका कल्याण प्राप्त करते हैं॥ २४ ॥

श्रीजानकीजीकी स्तुति

भई प्रगट कुमारी भूमि-विदारी जन हितकारी भयहारी।
अतुलित छबि भारी मुनि-मनहारी जनकदुलारी सुकुमारी॥
सुन्दर सिंहासन तेहिं पर आसन कोटि हुताशन द्युतिकारी।
सिर छत्र बिराजै सखि संग भ्राजै निज-निज कारज करधारी॥
सुर सिद्ध सुजाना हनै निशाना चढ़े बिमाना समुदाई।
बरषहिं बहुफूला मंगल मूला अनुकूला सिय गुन गाई॥
देखहिं सब ठाढ़े लोचन गाढ़ें सुख बाढ़े उर अधिकाई।
अस्तुति मुनि करहीं आनन्द भरहीं पायन्ह परहीं हरषाई॥
ऋषि नारद आये नाम सुनाये सुनि सुख पाये नृप ज्ञानी।
सीता अस नामा पूरन कामा सब सुखधामा गुन खानी॥
सिय सन मुनिराई विनय सुनाई समय सुहाई मृदुबानी।
लालनि तन लीजै चरित सुकीजै यह सुख दीजै नृपरानी॥
सुनि मुनिवर बानी सिय मुसकानी लीला ठानी सुखदाई।
सोवत जनु जागीं रोवन लागीं नृप बड़भागी उर लाई॥
दम्पति अनुरागेउ प्रेम सुपागेउ यह सुख लायउँ मनलाई।
अस्तुति सिय केरी प्रेमलतेरी बरनि सुचेरी सिर नाई॥

दो०—निज इच्छा मखभूमि ते प्रगट भईं सिय आय।
चरित किये पावन परम बरधन मोद निकाय॥

॥ श्रीजनकनन्दिनीकी जय॥

श्रीकिशोरीजीके द्वादश नाम-वर्णन

मैथिली जानकी सीता वैदेही जनकात्मजा ।
कृपापीयूषजलधिः प्रियार्हा रामवल्लभा ।।
सुनयनासुता वीर्यशुल्काऽयोनी रसोद्भवा ।
द्वादशैतानि नामानि वाञ्छितार्थप्रदानि हि ।।

(श्रीजानकी-चरितामृतम्)

१-मैथिली— श्रीमिथिवंशमें सर्वोत्कृष्टरूपसे विराजनेवाली श्रीसीरध्वजराजदुलारीजी ।

२-जानकी— श्रीजनकजी महाराजके भावकी पूर्तिके लिये उनकी यज्ञवेदीसे प्रकट होनेवाली ।

३-सीता— आश्रितोंके हृदयसे सम्पूर्ण दुःखोंकी मूल दुर्भावना-को नष्ट करके सद्भावनाका विस्तार करनेवाली ।

४-वैदेही— भगवान् श्रीरामजीके चिन्तनकी तल्लीनतासे देहकी सुधि भूल जानेवाली शक्तियोंमें सर्वोत्तम ।

५-जनकात्मजा— श्रीसीरध्वजमहाराज नामके श्रीजनकजी महाराजके पुत्री-भावको स्वीकार करनेवाली ।

६-कृपापीयूषजलधिः— समुद्रके समान अथाह एवं अमृतके सदृश असम्भवको सम्भव कर देनेवाली कृपासे युक्त ।

७-प्रियार्हा— जो प्यारेके योग्य और प्यारे श्रीरामभद्रजू जिनके योग्य हैं ।

८-रामवल्लभा— जो श्रीराघवेन्द्र सरकारकी परम प्यारी हैं ।

९-सुनयनासुता— श्रीसुनयना महारानीके वात्सल्यभाव-जनित सुखका भलीभाँति विस्तार करनेवाली ।

१०-वीर्यशुल्का— शिवधनुष तोड़नेकी शक्तिरूपी न्योछावर ही वधू रूपमें जिनकी प्राप्तिका साधन है अर्थात् जो भगवान् शिवजीके धनुष तोड़नेकी शक्तिरूपी न्योछावर अर्पण कर सकेगा, उसीके साथ जिनका विवाह होगा।

११-अयोनिः— किसी कारणविशेषसे प्रकट न होकर केवल भक्तों-का भाव पूर्ण करनेके लिये अपनी इच्छानुसार प्रकट होनेवाली।

१२-रसोद्भवा— जन्मसे ही अपनी अलौकिकता व्यक्त करनेके लिये किसी प्राकृत शरीरसे प्रकट न होकर पृथ्वीसे प्रकट होनेवाली।

श्रीललीजीके ये बारह नाम मनोवाञ्छित (मनचाही) सिद्धिको प्रदान करनेवाले हैं।

तीनि लोक अवलोकहिं नहिं उपमा कोउ।
दसरथ जनक समान जनक दसरथ दोउ॥ १२९ ॥
सजहिं सुमंगल साज रहस रनिवासहि।
गान करहिं पिकबैनि सहित परिहासहि॥ १३० ॥

तीनों लोकोंको देखते हैं; [परंतु] कहीं कोई उपमा नहीं मिलती। बस, महाराज दशरथ और जनकके समान तो जनक और दशरथ दो ही हैं॥ १२९ ॥ रनिवासमें बड़ा आनन्द है। सब लोग श्रेष्ठ मङ्गलसाज सजा रहे हैं और कोकिलबयनी कामिनियाँ परिहास करती हुई गान कर रही हैं॥ १३० ॥

उमा रमादिक सुरतिय सुनि प्रमुदित भईं।
कपट नारि बर बेष बिरचि मंडप गईं॥ १३१ ॥
मंगल आरति साज बरहि परिछन चलीं।
जनु बिगसीं रबि उदय कनक पंकज कलीं॥ १३२ ॥

उसे सुनकर पार्वतीजी, लक्ष्मीजी एवं अन्य देवताओंकी स्त्रियाँ आनन्दित हुईं और स्त्रियोंका सुन्दर छद्म-वेष बनाकर मंडपमें गयीं॥ १३१ ॥ वे मङ्गल आरती सजाकर दुलहेका परिछन करने चलीं, वे ऐसी प्रसन्न हो रही हैं मानो सोनेके कमलकी कलियाँ सूर्योदय होनेपर फूल उठी हों॥ १३२ ॥

नख सिख सुंदर राम रूप जब देखहिं।
सब इंद्रिन्ह महँ इंद्र बिलोचन लेखहिं॥ १३३ ॥
परम प्रीति कुलरीति करहिं गज गामिनि।
नहिं अघाहिं अनुराग भाग भरि भामिनि॥ १३४ ॥

जब वे नखसे चोटीतक श्रीरामचन्द्रजीके सुन्दर रूपको देखती हैं, तब सभी इन्द्रियोंमें इन्द्रके-से नेत्रोंको ही श्रेष्ठ समझती हैं। (वे सोचती हैं जिस प्रकार इन्द्रके शरीरमें हजार नेत्र हैं, वैसे ही हमारे भी रोम-रोममें नेत्र होते तो श्रीरामचन्द्रजीकी अनुपम रूपसुधाका कुछ आस्वादन कर पातीं) ॥ १३३ ॥ अनुराग एवं सौभाग्यसे भरी हुई वे गजगामिनी स्त्रियाँ परम प्रीतिपूर्वक कुलाचार करती हैं किंतु अघाती नहीं॥ १३४ ॥